व्यवस्थापक जब्बर सिंह सेंगर
कुलसचिव

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

# विषय-सूची

# प्रह्लाद

(त्रैमासिक पत्रिका)

वर्ष : १९८३ ( अप्रैल से सितंबर तक ) अंक : २

## वैदिक ईश-प्रार्थना

❀

## (भाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती)

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥२॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥४॥

[अथर्ववेद संहितायाम्। का०डे १०। प्रापाठ्के २३। अनुवाके ४ [सूक्ते ८] मं० १। [तथा सूक्ते ७ मन्त्र] ३२/३३/३४, ॥]

**भाष्यार्थ**—(यो भूतं०) जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत हो गया है, (च) अनेक चकारो से दूसरा जो वर्तमान है, (भव्य च) और तीसरा भविष्यत् जो होने वाला है, इन तीनो कालो के बीच मे जो कुछ होता है उन सब व्यवहारो को वह यथावत जानता है, सर्वंयश्चाधितिष्ठति) तथा जो सब जगत को अपने विज्ञान से ही जानता, रचता, पालन, लयकरता और संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है, (स्वर्यस्य च केवल) जिसका सुख ही केवल स्वरूप है, जो कि मोक्ष और व्यवहार सुख का भी देने वाला है (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) ज्येष्ठ अर्थात् सबसे बडा सब सामर्थ्य से युक्त ब्रह्म जो परमात्मा है उसको अत्यन्त प्रेम से हमारा नमस्कार हो। जो कि सब कालो के ऊपर विराजमान है, जिसको लेशमात्र भी दु:ख नही होता उस आनन्दघन परमेश्वर को हमारा नमस्कार प्राप्त हो ॥ १ ॥

सो प्रमा अर्थात् यथार्थज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त हैं तथा जिसने अपनी सृष्टि मे पृथिवी को पादस्थानी रचा है, (अन्तरिक्षमुतोदरम्) अन्तरिक्ष जो पृथिवी और सूर्य के बीच मे आकाश है सो जिसने उदरस्तानी किया है, (दिवयश्चक्रेमूर्धानम्) और जिसने अपनी सृष्टि मे दिव अर्थात् प्रकाश करने वाले पदार्थो को सबके ऊपर मस्तकस्थानी किया है, अर्थात् जो पृथिवी से लेके सूर्य लोक पर्यन्त सब जगत को रचके उसमे व्यापक होके, जगत के सब अवयवों मे पूर्ण होके सब को धारण कर रहा है, (तस्मै) उस परब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार हो ॥ २ ॥

(यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्र०) और जिसने नेत्रस्थानी सूर्य और चन्द्रमा को किया है, जो कल्प-कल्प के आदि मे सूर्य और चन्द्रमादि पदार्थों को बारबार नये नये रचता है, (अग्नियश्चक्र आस्यम्) और जिसने मुखस्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है, (तस्मै०) उसी ब्रह्म को हम लोगो का नमस्कार हो ॥ ३ ॥

(यस्य वातः प्राणाप्रानौ) जिसने ब्रह्माण्ड के वायु को प्राण और अपान की नाइ किया है, (चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्) तथा जो प्रकाश करने वालीकिरण हैं वे चक्षु की नाईं जिसने की है, अर्थात् उनसे ही रूप ग्रहण होता है, (दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्व०) और जिसने दश दिशाओ को सब व्यवहारो को सिद्ध करने वाली बनाई है, ऐसा जो अनन्त विद्यायुक्त परमात्मा सब मनुष्यो का इष्टदेव है, उस ब्रह्म को हमारा निरन्तर नमस्कार हो।

[ स्वामी दयानन्द . ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका. प्रथम मत्र के अन्तर्गत ]

# भारतवर्ष के इतिहास में ऋषि दयानन्द का स्थान

(महात्मा मुंशीराम 'जिज्ञासु')

## १. अवतरणिका

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि-क्रमेण"—अर्थात् प्रत्येक मनुष्य और जाति को उन्नति और अवनति क्रम से होती है—यह सूत्र अब इतना पुराना हो चुका है कि इसे और रगड़ने की जरूरत नही। रेखागणित को स्वतः सिद्धि भी इस ऐतिहासिक सूत्र के मुकाबिले मे क्या स्पष्ट होगी ?

अनजाने देखने वाले को इतिहास एक विचित्र नाटक सा लगता है। कही भयंकर मारकाट, कही शानदार राजदर्बार, कही नीचता और विश्वासघात के रोमाचकारी षड्यंत्र और कही अचम्भे मे डालने वाले स्वार्थ-त्याग, ये सब उसकी छोटी बुद्धि और कोमल मन को घबराहट मे डाल देते हैं। कुछ नही सूझता। बड़ी कठिन पहेली है ! किन्तु जरा विचार करने पर इन रौद्र और शान्त दृश्यो के अन्दर एक ही सूत्र बंधा दीखता है। रुधिर की नदियो और राजतिलक की सजावटो मे, विश्वासघातो और आत्मसमर्पणो में, क्रूरताओ और प्रेम के आश्चर्यकारी दृश्यो मे, जेलखानों और भयंकर तपस्याओ मे एक ही नियम काम करता दीखता है। एक पहाड़ की चोटी पर खड़ा है और दूसरा अन्धेरी गुफाओ मे रेंग रहा है ; एक जाति विलास और भोग मे पानी की तरह सोना बहाती है और दूसरी भूखो तड़पकर मरती है, नाना प्रकार की विषमतायें है, पर फिर भी सब एक ही माला की कलियां है। इस समता के सूत्र को—इस एकता के सिद्धान्त को यदि प्रत्यक्ष देखनी हो तो एक बार सभ्यता देवी के पद-चिन्हों पर चलते हुए ससार की सैर कर जाइए।

किसी समय इसी पुण्य-भूमि की संसार की शिरोमणि होने का सौभाग्य था। उस समय इसके सुपूत ससार की जातियों के कर्ताधर्ता थे। इसकी सभ्यता के चमकते प्रकाश से सभी देश प्रकाशित होते थे, इसके दीपकों से सब अपने 2 दीपक जलाते थे। किन्तु समय बदलता गया, भारत का दीपक धीरे 2 मन्द होने लगा, और वह देखो

उसके पश्चिम में सभ्यता का दीपक प्रकाशित होने लगा। यूनान की रम्य पहाड़ियों में जिस समय सभ्यता का प्रकाश हो रहा था, योरप के बर्फानी जंगलो मे अभी भयानक अन्धेरा था। पर जिस तरह की आन्धी ने भारत के दीपक को मन्द कर दिया था, एथैन्स के उद्यान में भी वही अपने दल-बल के साथ जा पहुची।

सभ्यता के प्रकाश ने रोम के सुन्दर प्रदेश मे शरण ली। फिर वही बात और फिर वही दृश्य। रोम को सूना छोड़कर रोमन विचारों के साथ साथ उसने ऐल्प्स पर्वत को पार किया। एकता, स्वाधीनता और उन्नति के भावों ने योरप की पुरानी गन्दगी के विरुद्ध क्रान्ति की घोषणा करदी। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक क्रान्तियां सभी देशों में क्रम से होती चली गयी। जहाँ 2 प्रकाश गया, गन्दगी के ढेरों मे सड़ाद करते हुए परमाणु छिन्न-भिन्न हो गए। अमेरिका के विस्तृत मैदानों को प्रकाशित करके उस प्रकाश ने जापान को प्रकाशित किया, और फिर भारत मे प्रवेश किया।

किन्तु क्या हुआ ? भारत ने उस प्रकाश को अस्वीकृत कर दिया, बड़े आश्चर्य के साथ उसने देखा कि जिस दीपक को सुगन्धित द्रव्यों की ज्वाला से उसने प्रज्वलित किया था, उसमे आज उनके बदले मट्टी का तेल जल रहा है। जिस सभ्यता को उसने प्रेम और भ्रातृभाव के विचारों से पुष्ट किया था, वह अब अशान्ति और कलह के भावों को उसके सामने ला रही है। एक बार जो ज्योति उसने उत्पन्न की थी, वह अब खराब हो गई उस ज्वाला का बुझकर एक नई ज्योति प्रज्वलित करने की जरूरत थी। पुरानी ज्वाला यदि अब तक नही बुझी तो वर्तमान युद्ध की रुधिर की धाराओं से बुझ जायेगी। दूसरी ओर एक नई ज्योति उसका स्थान लेने के लिए फिर इसी पुण्य भूमि में प्रज्वलित हो रही है। इस नई ज्योति की राह देखने के लिए, सभ्यगण, फिर एक बार मन के घोड़े को दौड़ा कर उसी केन्द्र पर ले आईए जहा पर पहिले चले थे, और एक नये मार्ग मे उसे चलने दीजिये।

बुद्ध और शंकर के प्रताप और यश से चमकती हुई भूमि में थोड़े ही समय के बाद आप विचित्र भेद पायेंगे। विद्वान् ब्राह्मण एक ओर हैं, वीर क्षत्रिय दूसरी ओर खड़े हैं, उधर धनी वैश्य और सच्चे सेवक विद्यमान हैं, सब सामान पड़ा है, पर कोई इन सब को इकट्ठा करने वाला नही ? ऐसे समय मे सादे तपस्वी और जोशीले मुसलमानो ने भारत की प्राचीन भूमि पर आक्रमण कर दिया। घोर युद्ध, दृढ़ मुकाबिला, आशातीत वीरता, सब ने इस प्रवाह को रोकना चाहा ; पर विश्वास-घात और कमजोरियों के छिद्रों ने उसे मार्ग दे दिया।

भारतवर्ष मुसलमानों के पैरो तले रौंधा जाता है। पर थोड़े ही समय मे इस नई बाढ़ का पानी भी उसी रंग में रंगा गया। भारत के महासागर मे मुसलमान भी एक नदी की तरह आ मिले! इतने मे बड़ी सजधज के साथ योरपियन जातियो ने रंग स्थली में प्रवेश किया। बहुत देर तक राजनैतिक उथल पुथल हुई, हिन्दू, मुसलमान, मराठे-सिक्ख, सभी ने नये आक्रमण का वीरता से मुकाबिला किया, पर पुराने छिद्र भी खुले हुए थे। अंग्रेज जाति भारत की स्वामिनी बनी।

राजनैतिक उथल-पुथल का अन्तिम द्रश्य 1857 ईसवी में सामने आया, और इसके बाद एक गम्भीर शान्ति और मरघट की सी सुनसान का दृश्य दीखता है।

किन्तु जहां एक ओर शान्ति होती है, वहां एक दूसरी हलचल शुरू होती है। पश्चिमी सभ्यता की ज्वाला—वही ज्वाला जिसे हम अभी देख कर आये हैं—भारत के मानसिक और सामाजिक क्षेत्र मे प्रकट होती है। आर्यजाति की जर्जरित सभ्यता पर जवान पश्चिमी सभ्यता नास्तिकता के हथियारों से आक्रमण करती है! एक ओर सदियो का पुराना अन्धविश्वास, दूसरी ओर ईसाई मत के कमज़ोर पर राज्य की सहायता पाते हुए सिद्धान्त-हिन्दू समाज मे एक खलबली पड़ गई, हिन्दू युवक के मस्तिष्क मे गड़बड़ होने लगी।

अनुभवी विद्वान् उस समय कहते थे कि एक महापुरुष की जरूरत है—ऐसे पुरुष की जरूरत है जो बाढ़ मे बहते हुए युवको को एक बार किनारे लगादे-एक व्यक्ति की जरूरत है जो दही और पानी के इस मथन में मक्खन को ऊपर निकाल दे। समय चाहता था कि कोई सुधारक आये, और वह सुधारक समय की गोद मे ही पल रहा था। वह आया, और नये पुराने का मन्थन करके सत्य के मक्खन को तैरा गया। हिमालय की सब से ऊची चोटी पर खड़े हो कर उसने सत्य का सन्देश सब दिशाओ को सुनाया। भारत मे एक नई ज्योति प्रज्वलित हुई। यह वही ज्योति है, जिसे देख कर अमेरिका के योगी एण्ड्रो जैक्सन डेविस का हृदय आशा की उमगों से खिल उठा था।

सभ्यगण क्या अभी यह बतलाने की जरूरत है कि यह कौन सी ज्योति है? और कौन सा महापुरूष है?

## २. स्वामी दयानन्द का इतिहास में प्रवेश और कार्य

सन् 1857 के बाद से भारतवर्ष के इतिहास में एक साम्प्रदायिक और सामाजिक हलचल शुरु होती है। केवल राजनैतिक पार्श्व को देखने वाले लोग समझते हैं कि इस समय यह देश गम्भीर निद्रा में सो गया, किन्तु वस्तुतः इस समय से एक नया जीवन और नई तैयारी आरम्भ होती है।

इससे पूर्व आर्य जाति अपने पुराने हथियारों से विदेशी आक्रान्ताओं का मुकाबिला करती थी, पर इस समय इस सिद्धान्त का आविष्कार किया गया कि "आर्य जाति का शरीर इतनी देर की लड़ाई से घायल हो गया है। उसकी शक्तियों मे फूट, सामाजिक दोषों और विश्वासघात का घुन लग चुका है। अतएव कुछ और शुरू करने से पहिले उसे इस बीमारी का इलाज कराना चाहिए।" इस आविष्कार को करने वाले और भारत मे नया जीवन फूंकने वाले महापुरुष का नाम

## स्वामी दयानन्द सरस्वती

था। अपने समय का वह मुख्य नायक था। इस समय का नाम हम बिना किसी सकोच के "दयानन्द-काल" रख सकते हैं। दो विरोधी सभ्यताओं की मिश्रित धारा मे पड़ी हुई जाति की नैया का वही खेवैया बना। इस खलबली के समय मे जाति के अग्रसर युवको का वही मार्ग-दर्शक अगुआ बना। वर्तमान हलचल में जाति का उच्चतम भाग उसी के विचारों से प्रभावित हुआ।

वह इतिहास का ग्रथ अपूर्ण होगा जिसमे इस बड़े अगुआ का - इस भारी सुधारक का - उल्लेख न हो। १९वी शताब्दी मे वह "भारतवर्ष का पिता" कहला सकता है। इस महापुरुष ने आर्य जाति के इतिहास में कैसे प्रवेश किया था? क्या कार्य किया? और उसका क्या प्रभाव हुआ? इसी को आज हम संक्षेप मे देखेगे।

कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने पूर्व यह महान् व्यक्ति कौन था और कैसा था? इन बातों पर यहां विचार नही करना होगा। इतना काफी है कि वह एक होनहार बालक था। जिस समय वह सासारिक सुख और सुखमय घर को छोड कर निकला, उसके मन को प्रेरणा देने वाला भाव मृत्यु से बचना वा मोक्ष की प्राप्ति थी। विन्ध्य, आबू और हिमालय के जंगलो मे वह इसी खोज में घूमता रहा। इस उद्देश्य मे उसे सफलता हुई वा नही - यह भी आज का विषय नही है। पर इस १४ वर्ष की खोज मे, नर्मदा की तलैटी से गगा के स्रोत तक भ्रमण करते हुए - न जाने किस घटना से और किस प्रकार से - उसका ध्यान अपनी मातृभूमि की करूणा जनक दशा की तरफ गया। उसने देखा कि आर्यजाति की ठीक जड़ मे जाति भेद, छूतछात, बाल विवाह और अन्ध विश्वास के कीड़े लगे हुए हैं। परस्पर घृणा, फूट और विश्वासघात ने जाति की शक्तियों का सत्यनाश कर दिया है। जब तक इन खराबियों का प्रतीकार न किया जाए, जब तक स्त्री पुरुष, ब्राह्मण शूद्र सबको समता के सूत्र मे बाधा न जाये, आर्य जाति का तब तक कल्याण नही हो सकता। जाति के स्वास्थ्य के लिए इन बुराइयों का हटाना और किसी बड़े उद्देश्य का सामने रखना जरूरी है।

पर यह कैसे हो ? दयानन्द में शक्ति कहां है कि वह इन भारी उद्देश्यों को प्राप्त करे ? विचार शील युवक को मालूम हुआ कि अभी शिक्षा पाने को जरूरत है। ३५ वर्ष की अवस्था ! वर्तमान समय के बाबू का जिस आयु में बुढ़ापा समाप्त होता है, दयानन्द उस आयु में शिक्षा पाने के लिए अपने प्रज्ञा चक्षु गुरु के चरणों में बैठता है। नि सन्देह उसकी शिक्षा रिवाज पूरा करने के लिए न थी, पर किसी उद्देश्य से थी।

शीघ्र ही शिक्षा समाप्त हुई, शक्ति-संग्रह हो चुका, अब कार्य-क्षेत्र मे उतरने का समय है। १८६३ ईसवी की वसन्त ऋतु की जब पहिले पहिल स्वामी दयानन्द ने कार्य क्षेत्र में प्रवेश किया।

सभ्यगण ! उस उद्देश्य को आंखों के सामने लाइये। एक अकेला युवक तीस करोड़ जनता के मुकाबिले के लिए खड़ा है। किसी प्रकार की तैयारी नही है, कोई भूमिका नही बधी, अपने आप ही जंगल मे निकाल कर उस मे चलना होगा। जाति नीद मे पड़ी है, उसे सपने मे भी मालूम नहीं कि क्या होने वाला है ? अकेला युवक, कोई भी उसका साथी नही जिसके वे ही विचार हो ! ऐसे समय मे एकदम इतने बड़े कार्य का आरम्भ करना किस का काम है ? कहा से शुरू करूं ? कैसे करू ? कौन सहायक होगा ? साधारण आदमी को तो ये ही विचार उठने नही देते। सदियों से मूर्ति-पूजा मे लगी हुई सोती जनता को एकदम यह कह देता कि मूर्तिपूजा बुरी बात है - किस का साहस होता है ? पर महापुरुष वही है जो सत्य उद्देश्य की और आख लगाये हुए किसी की परवा नही करता। सफलता होगी या नही ? इस की उसे परवा नही होती। स्वामी दयानन्द पर कठोरता का आक्षेप किया जाता है, पर यदि इस दशा की कल्पना की जाय, यदि इस पर ध्यान दिया जाय कि उसका कार्य कितना बड़ा था, तो कोई यह आक्षेप नही करेगा। सामाजिक दोषों का भारी वृक्ष जो उसे काटना था, उस्तरे से नही छिल सकता था, उसके लिए कुल्हाड़े की जरूरत थी।

इसी कुल्हाड़े को लेकर दयानन्द अपने कार्य मे प्रवृत्त हुआ, यद्यपि उसके मन में प्रेम की धारा बहती थी। किन्तु कार्य मे पड़े हुए देर न हुई थी, कि एक बड़ा तूफान आया। हरिद्वार का कुम्भ यह तूफान था। अन्धविश्वास का बल कितना है, यह इसी मे मालूम हो सकता था। साहसी युवक का चित्त भी एक बार डगमगा गया, पर फिर शक्ति-संचय करके उठ खड़ा हुआ।

व्याख्यान, शास्त्रार्थ, उपदेश, विवाद, पुस्तकें, पैम्फलेट, सभी रूप में उसकी शक्ति उसी प्रकार बहने लगी, जिस प्रकार एक शुद्ध स्रोत से पानी बहता है। किसी रुकावट

की उसे परवाह नही होती, जो सामने आये वही धुल जाता है। जाति की अवस्था का ठीक 2 अध्ययन करके और उसके सुधार के लिए शक्तिसंग्रह करके स्वामी दयानन्द कार्य क्षेत्र में उतरा था, इसी लिए उसे कोई रुकावट न थी, शक्तियों का प्रवाह एक दम बह निकला। उसका विरोध हुआ, भारी विरोध हुआ, पर विरोध उसके आत्म विश्वास के सामने तुच्छ था। एक मात्र लक्ष्य की तरफ ध्यान लगाये हुए वह मार्ग के विघ्नों के बिना देखे चलता गया। उसका हृदय विरोध से सन्देह में पड़ने वाला न था। निराशा, भय और स्वार्थ का उसे स्वप्न मे भी ध्यान न था। स्वामी दयानन्द का नाम सुनते ही यदि सब से पहिले कुछ ध्यान में आता है, तो वह यही निर्भय और आगे धकेलने वाला स्वभाव है।

देखने वाले को आश्चर्य होता है कि एक सच्चे प्रेमी का इस प्रकार का विरोध क्यों किया जाता था, पर आश्चर्य की बात नही, सुधारकों के साथ सदा ही यह वर्ताव होता है। वैद्य के नश्तर चलाने पर रोगी भले ही रोये, पर वैद्य को कोई उसका शत्रु नही कह सकता।

12 वर्ष तक लगातार यह संहार का कार्य चलता गया, काशी और कलकत्ते के दुर्भेद्य किले गिर चुके, अब रचना का समय आ पहुचा है। घास फूंस साफ हो चुका और हल फिर चुका, अब बीज बोने का समय आया। यह बीज कौन सा था ? यह बतलाने की जरूरत नही। नि सन्देह यह आर्यसमाज का बीज था। बम्बई और युक्त प्रदेश मे भारी श्रम करने पर भी फल थोडा हुआ, किन्तु अन्त मे नानक और गोबिन्दसिह के गाढे पसीने से सीची हुई पजाब की उपजाऊ कर्मभूमि मे प्रवेश करते ही उसे सफलता हुई। शीघ्र ही अंकुर निकला, वृक्ष बड़ा हुआ, और आर्य जाति के श्रान्त पथिक उस के नीचे आकर विश्राम लेने लगे।

स्वामी दयानन्द के जीवन का शेषभाग राजपूताने की वीरभूमि मे बीता, पर इस समय वह वीरभूमि भोग विलास से कलकित हो रही थी। अपने नायक के इतिहास मे प्रवेश और कार्य को सरसरी दृष्टि से हमने देख लिया है, पर अभी कुछ और देखना बाकी है।

## ३. स्वामी दयानन्द का वर्तमान और भावी पर प्रभाव

स्वामी दयानन्द के कार्य-क्षेत्र में प्रविष्ट होने से पूर्व भारतपूर्व की जो अवस्था थी, उसका पहिले वर्णन हो चुका है। उस समय और इस समय की तुलना करने से

इस महापुरुष का कार्य सर्वथा स्पष्ट हो जायेगा। उस समय जाति के अग्रगामी युवकों की प्रवृत्ति पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने और अपने आपको पाश्चात्य ढाचे मे ढालने की ओर थी, किन्तु वर्तमान काल मे जातीय सगठन और जातीय सुधार का कार्य उस प्रवृत्ति का स्थान ले रहा है। यह प्रभाव स्वामी दयानन्द के ही कार्य का हुआ है।

स्वामी दयानन्द का सारा कार्य दो भागो मे विभक्त हो सकता है—एक तो प्राचीन आर्य जाति का सुधार और दूसरा नवीन सभ्यता के आक्रमण को रोकना। इस सारे कार्य को यदि एक कार्टून के रूप मे दिखलाना हो तो इससे अच्छा कार्टून क्या हो सकेगा कि दयानन्द अपने दाये हाथ मे नश्तर लिए हुए चारपायी पर बीमार पडी हुई आर्यजाति के फोड़ो को एक तरफ चीर रहा है, और दूसरी तरफ बड़े वेग और शान से आक्रमण करती हुई पश्चिमी सभ्यता के हमलों को बाये हाथ मे पकड़े हुए भाले से निष्फल कर रहा है।

ये दो हाथो के दो कार्य इतने बड़े हैं कि इस समय तक इन्ही कार्यों का विस्तार भारतवर्ष के युवकों की प्रत्येक क्रिया मे फैला हुआ है। स्वामी दयानन्द का बड़प्पन इसी बात मे है कि उसका कार्य सर्वतोमुख है। जिस काम को उसने अपने हाथ मे लिया, उसमें किसी अश मे कोई कसर नही छोड़ी। जिस जाति का सुधार उसे करना था—जिस रोगी की चिकित्सा उसे करनी थी—उसकी छोटी से छोटी बुराई और छोटे से छोटे रोग का उसे ध्यान था। कोई बात उसकी आखो से बच नही सकती थी। आत्मा और परमात्मा के कठिन प्रश्नो से लेकर भोजन पान के विषय तक सभी का उसने सुधार किया। शिक्षा, ब्रह्मचर्य, सामाजिक सुधार, सभी प्रश्नो को उसने हल किया।

किन्तु इन सर्वतोमुख कार्यों के बीच मे जो प्रेरक भाव प्रत्येक की तह मे काम करता था, वह एक सत्य-धर्म और एक संगठित भारत वर्ष बनाने का था। आज कल के जातीयपक्ष के नेता दयानन्द को जातीयता का आरम्भिक सन्देश देने वाला भले ही न कहें पर निष्पक्षपात व्यक्ति को यह मानना होगा। काग्रेस के नेता जिस समय अपना बड़प्पन और सौभाग्य अग्रेजी चाल ढाल के अनुकरण मे समझते थे, उस समय अकेला स्वामी दयानन्द स्वदेशी की आवाज उठाने वाला था। आर्य भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनाने का किसी को सपना भी न आया था, जब कि दयानन्द ने इस कार्य की नीव रक्खी। अछूत जातियों के उद्धार मे भाग लेने वाले अब भी आर्यसमाज के बाहिर कितने सज्जन हैं?

साराश यह कि भारतवर्ष मे जितने भी जीवन युक्त कार्य इस समय हो रहे हैं, और जितनी भी जीती जागती संस्थाये विद्यमान हैं, दयानन्द के भाव और दयानन्द का आत्मा उन सब मे काम कर रहा है। यह बिना हिचकिचाये कहा जा सकता हैं कि जो लोग उसका नाम लेते घृणा करते है, उन मे भी यदि किसी प्रकार का जीवन आया है तो उसी के कारण आया है। सनातनधर्म सभा, जैनसभा, सिंहसभा और भिन्न 2 प्रकार की संस्थाएं कभी न बनती, यदि आर्यसमाज का उद्भव नही होता। सम्भव था कि उस अवस्था मे इन सभाओ के नेता अब तक ईसाई धर्म की छाया मे जा चुके होते। प्रत्यक्ष रूप मे यह समझा जाता है कि ये सस्थाये आर्यसमाज का और स्वामी दयानन्द के भावो का विरोध कर रही है, पर वस्तुत. ये उन भावों को किसी हद तक बढाने का साधन ही बन रही हैं। इस मे सन्देह नही कि जहां आर्य समाज के अभाव मे ये लोग ईसाई बनने से मुश्किल से बचते, वहा अब वे सम्प्रदाय को और पाश्चात्य सभ्यता के प्रवेश को रोकने मे कुछ हद तक आर्यसमाज का हाथ बंटा रहे हैं। जिन बातो के लिए किसी दिन वे स्वामी दयानन्द पर ईंटो की वर्षा करते थे, उन्ही बातो का केवल आर्यसमाज का मुकाबिला करने के लिए उन्हें आश्रय लेना पडता है। चाहे स्पष्ट रूप मे वे आर्यसमाज के विरोधी है पर स्त्री शिक्षा, शुद्रो को पढाना, ऋषि कुलो और कन्या पाठशालाओ का स्थापन तथा अन्य अनेक सुधार के कार्यो मे उन्हे आर्य-समाज के कारण ही ध्यान देना पड़ा है। मतलब यह कि उनमें यदि जीवन आया है, तो स्वामी दयानन्द के प्रभाव से, और यदि कोई गति हुई है, तो स्वामी दयानन्द के प्रभाव से।

इस महासुधारक ने आर्यजाति के मृतप्राय देह के अन्दर फिर से जीवन फूक दिया है। जब कोई जाति किसी प्रकार की उन्नति और आगे बढने मे तत्पर नही होती, जब उसके युवको की वेगवती शक्तिया को काम मे लगाने वाले किसी प्रकार के ऊचे उद्देश्य जाति के सामने नही रहते, जब स्वार्थ साधन ही उसके प्रत्येक सदस्य का मुख्य उद्देश्य रह जाता है, तब बन्द तालाब की तरह उसमें सडाद पैदा होती है और जाति का शीघ्र नाश हो जाता है। स्वामी दयानन्द के आगमन के पुर्व आर्य-जाति की यही अवस्था थी। कोई प्रश्न हल करने के लिए न थे, कोई ऊचे उद्देश्य प्राप्त नहीं करने थे। किन्तु स्वामी दयानन्द का बडा भारी उपकार आर्यजाति पर यही है कि उसने छोटे से बड़े तक प्रत्येक पुरुष के सामने कोई न कोई प्रश्न उपस्थित कर दिया है। शिक्षित पुरुषों के सामने बाधित शिक्षा, ब्रह्मचर्य, स्त्री शिक्षा आदि के प्रश्न उपस्थित है; देश सेवको के लिए राष्ट्रभाषा और स्वदेशी के प्रचार की समस्याये हैं, सुधारको के लिए अछूत जाति उद्धार का प्रश्न है, साधारण जनता के लिए मूर्तिपूजा का विचार उपस्थित है, विद्वानो के लिए वेद के अर्थों पर विचार और देश भाषा का साहित्य पूरा करने के काम हैं। फलतः सारी जाति मे बडे-2 उद्देश्यो के लिए गति पैदा हो गई है।

जिस सामाजिक हलचल मे स्वामी दयानन्द का कार्य शुरू हुआ था वह अभी समाप्त नही हुई। प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यताओ का मुकाबिला अब तक चल रहा है, किन्तु इसमे ज़रा भी सन्देह नही कि जिस विजय की आशा से आक्रान्ता ने आक्रमण किया था, वह निष्फल सिद्ध हुई। आक्रमणकारी को औंधे मुह गिराना पडा, उस की आशायें नष्ट हुई। यद्यपि राज्य के कारण उसे अब तक आश्रय मिला हुआ है, पर जिस सफलता की आशा थी, वह नही हुई। जाति का उत्कृष्ट भाग दयानन्द के विचारो के आगे झुक गया।

दयानन्द का ठप्पा केवल समकालीन विचारो पर ही नही लगा, पर उसका प्रभाव भविष्यत् मे दर 2 तक पहुँचेगा। उसकी हुई क्रान्ति इतिहास मे बडे 2 परिणाम लायेगी, उसकी शिक्षाये बड़े 2 कारनामे बनाएगी। कौन जानता है कि क्या होगा? पर सब को विश्वास है कि कुछ न कुछ होने वाला है। कौन जानता था कि गुरुनानक की सीधी-सादी शान्तिमय शिक्षायें किसी दिन अत्याचारी मुगल राज्य के मुकाबिले मे समर्थ होगी? कौन जानता था कि मुगल राज्य के पैदा होने से भी पूर्व महाराष्ट्र मे सुधारक गण उसके नाश का बीज बोने के लिए मैदान तैयार कर रहे है? कौन जानता है कि स्वामी दयानन्द का सत्योपदेश भावी मे किन 2 पापो का समूल नाश करेगा? सत्य का प्रकाश किसी खास उद्देश्य से नही होता, जो बुराई सामने आये, जो पाप पैदा हो—चाहे वह नया हो चाहे पुराना—सत्य को कठोर शस्त्रधारा मे स्नान किए बिना नही बचता।

हमे विश्वास है—और पूरा विश्वास है—कि किसी दिन ऋषि दयानन्द के भाव ससार की बडी 2 पापमय शक्तियो का नाश करेगे, दिन आयेगा जब ये भाव संसार चक्र को हिलाने में एंजिन का काम करेगे ससार के बडे 2 विकट प्रश्नो का उत्तर इन्ही भावो मे मिलेगा। परमेश्वर करे उस शुभ दिन का शीघ्र आगमन हो।

## ४. अन्तिम वचन

ऋषि दयानन्द कौन था, क्या था और उसने क्या किया? ये सब बाते हो चुकी। पर इनसे हमे क्या लाभ हुआ? कोई उद्यान कितना ही सुन्दर हो, पर जब तक हमारे अधिकार में नही, हमे उससे क्या लाभ? मोतियो का हार कितना ही कीमती हो, जब तक हमारे गले मे नही पडा उसकी चिन्ता करना निरर्थक है। दर्पन कितना ही अच्छा हो अन्धे के लिए उसकी कीमत पैसा भर भी नही है। भोजन कितना ही स्वादु हो पर रोगी के लिए उसकी चिन्ता करना लाभ के बदले हानि करेगा। इसी प्रकार जीवन कैसा ही उच्च क्यो न हो, यदि हम उसका अनुकरण नही कर सकते—उसे ज्योतिः स्तम्भ नही बना सकते—हमे कोई लाभ नही।

ऋषि दयानन्द के भावों ने यदि हमारे हृदय में कुछ प्रेरणा की है, उसके पवित्र उजले चरित्र ने यदि किसी निराशा के समय हमारे मन को सहारा दिया है, उसके सारे यत्न से यदि हम कुछ भी लाभ उठाना चाहते हैं, तो उसकी एक सर्वोत्कृष्ट शिक्षा को हमें कभी न भूलना चाहिए। वह शिक्षा यह है कि "सामाजिक जीवन को बनाने के लिए वैयक्तिक जीवन की जरूरत है। अच्छा राष्ट्र बनाने के लिए अच्छे मनुष्यों की जरूरत है"। हमारे अन्दर कितना ही जातीय जोश हो, यदि हमारे वैयक्तिक जीवन उच्च नहीं तो उस से कुछ भी लाभ नहीं। देश-प्रेम और जातीयता का सर्वोत्तम जोश अपने जीवन के बनाने और अपने शरीर और मन को पुष्ट करने में प्रकट होता है। क्या ही अच्छा हो यदि ऋषि दयानन्द का उज्वल चरित्र हमारे जीवन के सुधार में थोडा भी सहायक बन सके, और हम सब समर्थ और अधिकारी हृदयो के सच्चे विश्वास के साथ फिर यह आशा कर सकें—"जैसा था पहिले भारत उससे भी बढ़के होगा। जब मेरा भाई 2 भारत का भेट होगा।"

---

(साहित्य परिषद् के ऋष्युत्सव में ब्र० जयचन्द्र द्वारा पठित)

(संदर्भप्रचारक/भाग २७/कार्तिक तथा मार्गशीर्ष ५ संवत १९७२ पृ० के सघ तक से उद्धृत)

# ज्ञानदेव का वर

ले० माननीय बलभद्र कुमार जी हूजा।
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ज्ञानेश्वरी के ग्रन्त में ज्ञानदेव महाराज ने परमात्मा से वर मांगा कि वह उन्हें प्रसाद दे। क्या प्रसाद दे? क्या वर मांगा उन्होंने? वर मांगा कि जो खल हैं, उनकी वक्रता दूर हो, उन्हें सत्कर्मों में रस प्राप्त हो। सर्वत्र मैत्री की भावना फैले। इस पृथ्वी पर विचारवान् व्यक्तियों की वर्षा हो, ऐसे व्यक्तियों की जो ईश्वरनिष्ठ हों। वे लोगों से सतत मिलते रहें ग्रौर सूर्य की भांति सर्वत्र प्रकाश करें, परन्तु उनमें सूर्य को प्रखरता के बजाय चन्द्र की शीतलता हो। वह समाज मे सदा घूमते रहें ग्रौर कल्पतरु की भांति लोगों की कामनाएं पूर्ण करें। कल्पतरु तो एक स्थान पर खड़ा रहता है परन्तु ज्ञानदेव महाराज ऐसे कल्पतरु मांगते हैं जो घूमते फिरते रहें, दरिद्र नारायण के द्वार पर पहुचें। वह चाहते हैं कि हमारे ग्राम चेतनामय हों। तमोगुण के बजाय सतोगुण का राज्य हो। वह चाहते हैं कि सारा समाज ग्रनंत सागर की भांति भक्तिमय हो।

यही विद्यालयों का, विश्वविद्यालयों का, गुरुकुलों का लक्ष्य है, ग्रथवा होना चाहिए। विद्यालयों का वही कर्तव्य है कि ऐसे सत्पुरुष पैदा किये जाएं जो सतोगुणी हों मानव मैत्री की भावना से प्रेरित हों, लोगों के बीच जाकर कल्पतरु की तरह उन की कामनाएं पूरी करें। उनके दुःख, कष्ट, संताप को हरें। सर्वत्र शीतल चन्द्रमा की तरह प्रकाश करें, ग्रन्धयारे का नाश करें।

लेकिन यह मनुष्य रूपी पुतला है बड़ी ग्रजीबोगरीब चीज। इसके ग्रन्दर सदा उथल-पुथल मची रहती है। सदा संघर्ष होता रहता है सतोगुणी ग्रौर तमोगुणी शक्तियों का पलड़ा भारी होता है, तो कभी तमोगुणी शक्तियों का। गुरुजनों का, माता पिता का, शिक्षा संस्थानों का लक्ष्य होना चाहिए कि सतोगुणी शक्तियां तमोगुणी

शक्तियों पर हावी हों और केवल नई पीढ़ियों में ही नहीं, परन्तु स्वयं में भी शुभ विचारों एवं शुभ आचरण की प्रवृत्तिया फलित हों। पर यह कैसे हो ?

व्यवहार शास्त्री इस बात पर एकमत है कि व्यक्ति का आचरण उसके विचारों पर आधारित होता है। जैसे विचार होते हैं, वैसा ही आचरण बनता है। मनुष्य का अहं जिस प्रकार के व्यक्तित्व की श्लाघा करता है, उसका आचरण भी उसी प्रकार ढलता है। प्रत्येक व्यक्ति का कोई न कोई आदर्श व्यक्ति होता है। आदर्श व्यक्ति और अपने के बारे है जैसी उसकी धारणा होती है (चाहे काल्पनिक ही हो) वह उसके अनुसार अपने आचरण को ढालता है। कोई व्यक्ति अपना आचरण सफल खिलाड़ियों के जीवन के अनुसार ढालता है, तो कोई सिनेमा के सितारों के अनुसार। कोई साधु संन्यासियों को अपना आदर्श व्यक्ति मानते हैं, तो कोई पूजीपतियो को अथवा सैनिक अधिकारियों को।

विचार में असीम शक्ति है। विचार ही मनुष्य के आचरण को प्रेरणा देते हैं। इसीलिए सभी धर्म प्रचारक शुभ विचारो के महत्त्व पर जोर देते हैं। इसीलिए वेदों मे गायत्री को गुरुमन्त्र की संज्ञा दी है। किसी ने गायत्री के बारे मे ठीक ही कहा है—

महामन्त्र जितने जग माही,
कोऊ गायत्री सम नाही।
सुमिरिन हिय मे ज्ञान प्रकासे,
आलस पाप अविद्या नासे॥

गायत्री के महत्त्व को समझाने के लिए पहले हमें उसके अर्थ को ग्रहण करना होगा। सरल हिन्दी मे गायत्री का अनुवाद इस प्रकार होगा—

हे प्राणाधार, दुःखों का नाश करने वाले, आनन्द स्वरूप, रक्षक ! जगत के सर्जनहार, वरणयोग्य शुद्ध स्वरूप और पवित्र करने वाले तेज को हम धारण करें। आप हमारी बुद्धियों को प्रेरणा दें, सन्मार्ग पर ले चलें। हमारी बुद्धियों को सही मार्ग पर ले चलो, हे भगवान् यही हमारी प्रार्थना है, यही हमारी कमाना है।

यदि बार-बार इस मन्त्र का उच्चारण किया जाये, इस पर मनन किया जाए तो अवश्यमेव बुद्धि पर इसका असर होगा ही। संसार में विचरते हुए, संसार क्षेत्र में संघर्ष करते हुए मन पर हर प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं, कई प्रकार का मैल इकट्ठा होता है। उसको धोने के लिए शुभ विचारों की गंगा में स्नान करना आवश्यक हो जाता है और उस गगा का उद्गम स्रोत है गायत्री मन्त्र।

महर्षि दयानन्द गायत्री के सम्बन्ध में लिखते हैं :—

"जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जाकर सावधानता पूर्वक जल के समीप स्थित होकर नित्य कर्म करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मंत्र का उच्चारण अर्थ-ज्ञान सहित करें और इसके अनुसार अपने चाल चलन को बनावें। यह जप मन से करना उत्तम है।"

महर्षि साधकों को गायत्री जप बतलाया करते थे। एक बार महाराज ग्वालियर से आपने कहा कि भागवत सप्ताह की अपेक्षा गायत्री पुरश्चरण अधिक श्रेष्ठ है।

स्वामी विवेकानन्द ने गायत्री को सद्बुद्धि का मंत्र बतलाया है और कहा है कि परमात्मा से मागने योग्य यदि कोई वस्तु है तो सद्बुद्धि है। सद्बुद्धि से सन्मार्ग मिलता है सत्कर्म होते हैं, तभी सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।

कविवर टैगोर ने तो यहा तक कहा है कि भारतवर्ष को जगाने वाला सरल मंत्र गायत्री है। इसके उच्चारण करते समय ऐसा अनुभव करना चाहिए कि मैं किसी देश विशेष का वासी नही हूँ अपितु सारा जगत मेरा है। मैं सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों आदि के बीच खड़ा हूँ। यह सारा संसार जिस शक्ति से सुशोभित है, परिचालित है, उस दिव्य ज्योति का हम ध्यान करते हैं, उसका हम वरण करते हैं, वह हमारी बुद्धियों को प्रेरणा दे।

आइये, हम भी ज्ञानदेव की तरह परमात्मा से वर मांगे कि हम पृथ्वी पर विचारवान् ईश्वरनिष्ठ व्यक्तियों की वर्षा हो जो समाज में सदा घूमते रहें और कल्पतरु की भाति लोगों की कामनायें पूरी करने हेतु दरिद्र नारायण के द्वार पर पहुँचे। तमोगुण का नाश हो, सतोगुण का राज्य हो।

— 0 —

# लन्दन में गुरुकुल सहभोज
## (ले०—महात्मा मुंशी राम जी)

हमारे हाकिमों की विलायत में सब काम विलायती ही होते हैं। जहां भारतवर्ष में इस समय बिना दाना पानी के लालच के भी सभा सभाओं में सहस्रों नरनारी एकत्र हो जाते हैं, वहां इंग्लिस्तान की विलायत में बिना चोगे के प्रलोभन दिए गए एक मानवी जानवर को भी कोई फांस नहीं सकता। इसलिए गुरुकुल का जन्मोत्सव मनाने वालों को भी भोजन का लालच देना पड़ा। पर इस से एक बड़ा लाभ हुआ; जिस लण्डन में कोई भी ऐसा सहभोज नहीं होता जिस में मांस का अधिक मान न हो वहां इस सहभोज में मांस का सर्व अंशों में त्याग किया गया। सब के लिए निरामिश भोजन था।। यह सौभाग्य गुरुकुल को ही प्राप्त है कि जहां उस के संसर्ग में आते ही कई ईसाई और मुसलमान सदा के लिए निरामिश्रभोजी हो गए वहां उस के नाम पर इकट्ठी हुई सभा के कारण भी कई व्यक्ति कम से कम एक समय दुष्ठ मांस भोजन से बच गए। ट्रब्यून लाहौर के सम्वाददाता लिखते हैं कि लन्डन मे कई हिन्दुस्तानियों के मिलाप होते हैं परन्तु यह पहला ही अवसर था कि वे सब शुद्ध शाकफलभोज के लिए एकत्र हुए।

. गुरुकुल के पुराने मित्र महाशय रैंजेमेकडानल्ड सभापति थे। उन्होंने पहले सम्राट और राज परिवार का प्रस्ताव उपस्थित किया और उसके पीछे गुरुकुल के सम्बन्ध मे कहा :—

I must first of all thank you for asking me to preside here. I have been to the Gurukula and have seen its work, and consequently I consented with pleasure to take the chair for several reasons. When I went to India I heard insinuations against the Arya Samaj, which as in the case of other great institutions, are for the purpose of explaining not what they are, but what they are not.

I would not have ventured to publish a book on India after the brief experience of my first visit, had it not been for the pressing commands of Lord Morley. One of the chapters dealt with the Arya Samaj but its purpose was not so much to explain but to defend for at the time the Arya Samaj was regarded as a seditious organization.

The official attitude is different today ; the black books were closed when Sir James Meston visited the Gurukula and the white books were opened tor future use ; my only fear is that the Gurukula would become too respectable. The Samaj is beginning to be understood, and when it is so, it will be appreciated, but we must assume for the future that the Arya Samaj, like every other institution, can only do its best if it is criticised, sympathetically and is looked upon with a friendly eye. I feel pleasure in coming here because I respect Gurukula. I am also here tonight because I can never forget my arrival at Hardwar on a beautiful summer morning." Here the speaker described the place as he saw it. I "remeber he continued, "so well the magnificent presence of the Principal, who is the spirit and the father of the institution. Mr. Macdonald further said, "One cannot be in the presence of Mahatma ji without feeling that on is in the presence of a man favoured with spiritual magnificence. I should be most ungrateful if I did not carry in my memory the most tender impressions of the Gurukula its Principal and students. It is pursuing the right line of education for India's advancement. I am a member of the Royal commission, hence I can say very little on the subjects referred to us, but start with a slight criticism on education with this fundamental proposition, that every system of education which is going to develop the minds of students is the system connected with the civilisation of the students themselves. Woe for the day when the education of the Scotch passed into the hands of the English ! On that day the death-knell was rung of an ancient Scotch civilisation. The same is the case with India, whose education must find its roots in India itself.

I am convinced that the Gurukula is pursuing the right line of Indian educational advance. The system of education that can develop the mind of the student best, is a system that is based upon the civilisation and traditions of the people who are to be educated. Indian education must find its source, its roots, its inspiration in India itself. The West has a great deal to teach India, and India can not isolate herself from the West. But I am using these words precisely in the same way when I say that the West could not isolate itsels from the East only in so far as East and West learnt from each other; would they both develop, as they ought to do, under modern conditions.

Concluding, Mr. Machdonald said : The origin and the parentage of the Gurukula and the welcome that it gave me, and finally the fact that I believe its system to be scientific and natural, give me pleasure to preside here and to propose the toast of that wonderful 'institution."

इस वक्तृता का अक्षरशः अनुवाद न दे कर इतना ही लिख देना पर्याप्त होगा कि श्री महाशय मैकडोनेल्ड की सम्मति में भारतवर्ष में गुरुकुल ही एक स्वाभाविक और वैज्ञानिक शिक्षणालय है और इसी लिए वह उस अवसर पर प्रसन्नता से सभापति बने । उनकी वक्तृता से यह नई बात ज्ञात हुई कि उन्होंने अपनी पहली यात्रा के पश्चात् जो पुस्तक भारतवर्ष की क्रान्ति पर लिखी थी वह भी लार्ड मोरले की आज्ञा से लिखी थी । उस समय तो आर्य समाज के विरोधियो का समाधान करने की आवश्यकता थी परन्तु इस समय सर जेम्स मेस्टन के गुरुकुल मे जाने से सन्देह के बादल उड़ गए, काली पुस्तक बन्द हो गई और श्वेत पुस्तक के पत्र भविष्य के लिए खुल गए ।

यहा श्री मैकडोनेल्ड से सन्देह प्रकट किया है कि गवर्नमेंट की सरक्षा मे आकर गुरुकुल कही अधिक नामी बन जाए । श्री मान् मैकडोनेल्ड महाशय को निश्चय रखना चाहिए की गुरुकुल के लिए (Too Respectable) बनने का अवसर समीप के भविष्य मे आने की संभावना नहीं है । जिस प्रेम से महाशय मैकडोनेल्ड ने गुरुकुल, उसके आचार्य और ब्रह्मचारियों का स्मरण किया वह सिद्ध करता है कि यदि सारे यूरप में कोई ऐसा स्थान है जहा से प्रेम और सहानुभूति की आशा हो सकती है तो वह स्काच जाति और उसकी सम्बन्धिनी उपजातियों से हो सकती है ।

इस अधिवेशन में सर कृष्णगोपाल गुप्त इन्डियन सेक्रेटरी आवस्टेट को कौन्सल के माननीय सभासद् भी उपस्थित थे । उन्होंने अतिथियों की ओर से उत्तर देते हुए कहा कि उससे पहले कुछ वक्ताओं ने ऐसा भाव प्रकट किया है कि जिससे आर्य समाज केवल पश्चिमी शिक्षा के विचारों का ही विरोधी सिद्ध हो परन्तु उन्होंने उपस्थित सभ्यों को बताया कि इसे नही भूलना चाहिए कि जो बुराइयां हिन्दू मत के गिर्द जमा हो गई हैं उनका भी गुरुकुल वैसा ही विरोधी है । मेरी सम्मति में सर गुप्त ने गुरुकुल की स्थिति को बहुत ही स्पष्ट कर दिया । यदि यह विरोधी है तो सब बुराइयों तथा उल्टी शिक्षा प्रणालियों का चाहे वे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कही की भी क्यों न हों ।

इस सभा में प्रसिद्ध कन्सरवेटिव मैम्बर पार्लिमेन्ट सर एम. आव नगरी, मिस्टर आर्नल्ट C. I. S. मिस्टर मीट और मुम्बई के प्रसिद्ध वकील महाशय पारख भी

उपस्थित थे। ऐसे महानुभावों की सहानुभूति बहुत ही आशातीत है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की श्रेष्ठता इस समय केवल बड़े विचारशील तथा धर्मात्मा पुरुष ही अनुभव करते हैं, परन्तु समय आने वाला है जब कि योरप के सर्व साधारण नर, नारी वर्तमान भयानक सभ्यता से सताए हुए प्राचीन शान्तिदायक वैदिक सभ्यता की शरण आना चाहेंगे। उस समय लोग गुरुकुल के उपचार को समझेंगे और उस बाल ब्रह्मचारी ऋषि के घोषणा पत्र का मान करेंगे जिसने गिरे हुए ससार को स्वर्णीय वैदिक काल का पता दिया था।

( —मुंशीराम )

(सद्धर्मप्रचारक—भाग २७, ज्येष्ठ १६ सम्वत् १९७२ पृ० ५–६ से साभार)

— 0 —

# उद्योगिनम् पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी

ले० माननीय बलभद्र कुमार जी हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्री वेदप्रकाश पीपल्ज इंश्योरेंस कम्पनी के सुसज्जित आफिस में बैठे अपने स्टेनोग्राफर को एक पत्र लिखवा रहे थे, कि बजर हुआ। श्री वेद प्रकाश ने टेलीफोन का चोंगा उठाया, और कड़क कर बोले, "तुम्हें कितनी दफ़ा कहा है कि जब मैं डिक्टेशन दे रहा होता हूं, किसी प्रकार का विघ्न नहीं होना चाहिए।" दूसरी ओर से उनका सहायक पी० ए० बोला, साहब, क्या करूं? एक सज्जन आये हैं। अपने आपको आपके भांजे कहते हैं; विद्याधर नाम है। कहते हैं, बहुत जरूरी काम है। अभी मिलवा दो। वेदप्रकाश पिघल गये। विद्याधर उनका फेवरिट भांजा था। आजकल घबराया-घबराया रहता था। उसका कम्पेटीशन का परीक्षाफल निकलने वाला था। सोचा, जरूर कोई परेशानी होगी। बोले, "अच्छा भेज दो।" जैसे ही विद्याधर ने कमरे में प्रवेश किया, वेदप्रकाश ने अपने स्टैनो को छुट्टी दे दी और कहा, "तुम जा सकते हो, इन्हीं लाइन पर ड्राफ्ट बना कर मुझे लंच के बाद दिखला देना।" स्टैनोग्राफ़र "यस्सर" करता हुआ बाहर चला गया।

विद्याधर धम्म से उसके द्वारा खाली की हुई कुर्सी में इस तरह गिर पड़ा जैसे गोबर का बना निर्जीव पुतला हो।

"क्यों क्या बात है, विद्याधर ?" वेदप्रकाश ने मुस्कराते हुए पूछा।

"बात क्या है ? खाक। मैं अबकी दफा फिर अनुत्तीर्ण हो गया हूं। न जाने मेरी किस्मत में क्या लिखा है।"

"अरे किस्मत में तुम्हारे लिखा है राजपाट, गद्दी। हां संघर्ष तो करना ही होगा"

संघर्ष, संघर्ष, मामाजी, संघर्ष करते-करते तो मैं थक गया हूं।"

"तो फिर घबराने की क्या बात है ? अभी तो तुम नौ-जवान हो। कोई चौबीस वर्ष की आयु में थोड़े ही निराश हो जाते हैं। याद नही पंडित सुखराम उस दिन क्या कह रहे थे ? तुम्हारी सिंह राशि है, तुम सिंह की तरह, "मैं पंडित सुखराम की ढकोसलेबाजी से बाज आया। वह चिकनी चुपड़ी बातें न करे तो उनकी दुकान कैसे चले ?" विद्याधर बोला।

"खैर, हमें पडित सुखराम की दुकान तो चलानी नही। हमे तो तुम्हारी गाड़ी चलानी है। अभी एक चान्स और बाकी है न ? उद्योगिनम् पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी। लो तुम्हारे लिए चाय मंगाते हैं।"

वेद प्रकाश ने चोगा उठाया और अपने पी० ए० को दो चाय का आर्डर दिया।

जब तक चाय आती वेदप्रकाश ने कहना शुरू किया, "विद्याधर, देखो, दुनिया मे जो कोई भी आया है उसे सघर्ष तो करना ही पड़ता है। केवल मा के पेट मे ही बिना सघर्ष के पालन-पोषण होता है। इसके बाद तो हाथ-पैर हिलाने ही पड़ते हैं। और जितना-जितना कोई सघर्ष करते हैं, उसी के अनुसार फल भी मिलता है। कई बार फल नही भी मिलता, उस समय वीर पुरुष असफलता के कारणो का विश्लेषण करते है, और उन्हें दूर करने का यत्न करते है। यही तो आदमी-आदमी की पहचान होती है। तुम्हें तो अभी घबराने की कोई जरूरत नही। हम सब तुम्हारी मदद को उपस्थित है। सुनो, मुझे आज ही डी० ए० वी० कालेज, फगवाडा के चेयरमैन का फोन आया था। उसके यहा इस वर्ष फिलासफी के लैक्चरर की जगह निकली है। यदि तुम चाहो तो मै तुम्हारा नाम प्रस्तावित कर दूं। तुम पढाते भी रहना और अगले साल के कम्पटीशन की तैयारी भी करते रहना। काम मे तो रहने से तुम्हारा नैराश्य दूर हो जायेगा।"

विद्याधर को तसल्ली हुई और उसने अपनी स्वीकृति दे दी। उसने सोचा कि चलो, कहीं तो ठिकाना बनेगा। वरना आज-कल के कम्पटीशन के युग मे तो कही भी पैर बढाना मुश्किल है। विद्याधर ने अकैडिमिक कैरियर मे सदा ही वजीफे प्राप्त किये थे। एम० ए० मे आकर वह राजनैतिक ऐक्टिविटी मे दिलचस्पी लेने लग पड़ा इसलिए उसकी गाड़ी जरा उलट गई थी। फिर भी उसकी हाई सैकंड क्लास आई थी। और उसने यूनिवर्सिटी में फर्स्ट पोजीशन केवल आठ अंको से मिस की थी। चुनाचि जब उसकी अर्जी डी० ए० वी० कालेज फगवाडा की सिलेक्शन कमेटी के सामने प्रस्तुत हुई, वह तुरन्त चुन लिया गया। उसका रिकार्ड बाकी सब आवेदको से अच्छा था।

वह होनहार था, अच्छा बोलने वाला था। अच्छे व्यक्तित्व का मालिक था। शीघ्र ही उसने अपने साथी अध्यापकों पर अपने प्रिंसिपल पर और विद्यार्थियों पर अपनी काबिलियत की छाप बिछा दी।

अगले साल उसने फिर कम्पटीशन की परीक्षा दी और द्वितीय पोजीशन पाकर सफल हुआ। डी० ए० वी० कालेज से उसने इस्तीफा दे दिया। समय पाकर वह सरकारी सीढ़ी पर चढ़ता ही गया, और आखिर चीफ़ सेक्रेटरी के पद से रिटायर हुआ।

— 0 —

# शिक्षा गुरु भगवान् दयानन्द

## (सम्पादक—महात्मा मुंशी राम जिज्ञासु)

### अवतरणिका

"वही देश सौभाग्यवान् होता है जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्तधर्म का प्रचार होता है"।

(स. प्र. 76)

पिछली शताब्दी के आरम्भ मे भारतवर्ष की राजनैतिक दशा वहुत शोचनीय थी। अशान्त राजनीतिक दशा के कारण भारतवासियों की मानसिक आर्थिक सामाजिक दशा और वैयक्तिक जीवन बहुत गिर गये थे। हमारे देश के लोग मूर्खता के कारण अन्धविश्वासी हो गये थे। ऐसा समय था जबकि ऋषि दयानन्द ने जन्म लिया। ऋषि दयानन्द के सामने बड़ा भारी काम था, यह काम अनायास ही में नहीं हो सकता था। ऋषि दयानन्द ने इस बड़े काम को पूरा करने के लिए पहले तैयारी की, अपने को योग्य बनाया, और पुनः दृढ़ सकल्प कर कार्यक्षेत्र में जा उतरा।

भारत की इस शोचनीय, गिरी हुई दशा को सुधारने का एक मात्र उपाय जो ऋषि दयानन्द को सूझा, वह शिक्षा थी। ऋषि दयानन्द से आधीशताब्दी पहिले राजाराममोहनराय को भी मातृभूमि की दशा पर तरस आया था, और देशवासियों की इस गिरी हुई दशा से उठाने का उन्होंने भी भरसक यत्न किया। राजा साहिब ने भी शिक्षा को ही सुधार का मुख्य साधन समझा। लोगों को शिक्षित किये बिना देश का अज्ञान दूर न हो सकता था। पर राजा साहिब अपने शुभ प्रयत्न मे सफल मनोरथ न हो सके, आज शताब्दी बीत जाने पर भी उनका नाम और कान इने गिने शिक्षितों तक ही परिमित है सर्वसाधारण उनको जानते तक नहीं। इसका कारण है। राजा साहिब ने जिस रीति का, जिस शिक्षा नीति का, अवलम्बन किया वह ठीक न थी, वह विदेशी थी, विदेशी भाषा साहित्य और आचार को उस मे बड़ा स्थान दिया गया था। अतएव अंग्रेजी पढ़े लिखे ही उससे लाभ उठा सके। सर्वसाधारण को उससे कोई फायदा न हुआ। पर इसके विपरीत ऋषि दयानन्द की शिक्षानीति देशी ढंग की थी। उसमें भारतीय सभ्यता, आचार, भाषा आदि को विशेष स्थान दिया गया था। यही

कारण है कि आज स्वामी दयानन्द का नाम शिक्षित और अशिक्षित दोनों मे समान रूप से प्रसिद्ध है। ऋषि दयानन्द की सफलता का एक कारण यह भी था।

यह ठीक है कि ऋषि दयानन्द ने अंग्रेजी ढग की शिक्षा नहीं पाई थी, न ही वे पाश्चात्य विद्वानों के विचारों से पूर्ण रूप से परिचित थे, पर इससे यह न समझना चाहिये कि उनके शिक्षा सिद्धान्त पाश्चात्य वैज्ञानिकों के शिक्षा सिद्धान्तों से किसी दरजे घटिया हैं। कई अंग्रेजी रंग में रंगे हुए विद्वान् कह दिया करते हैं कि स्वामी दयानन्द भारतवासियों को पुनः पण्डिताऊ ढंग की शिक्षा देकर कई शताब्दी पीछे फेंकना चाहता चाहता है। उन सज्जनों की जानकारी के लिए हम ऋषि की शिक्षापद्धति की आलोचना कर, यह दिखाने का यत्न करेंगे कि ऋषि की शिक्षाप्रणाली वैज्ञानिक ढंग की है, खूब सोच विचार कर उसकी रचना की गई है, और किस प्रकार वह पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रज्ञो Educationists के शिक्षा सिद्धान्तों से समानता रखती है।

शिक्षा के ३ लक्ष्य हैं, बालक (जिसको शिक्षा देनी है, शिक्षक और शिक्षा) इन तीनों के विषय मे क्रमश. विचार करते हैं।

१. अंग्रेजी में एक कहावत है कि 'The child is father of the man' अर्थात् बालक मनुष्य का पिता है। भाव यह कि आज जो बालक है कल उन्होने बड़े होकर पिता बनना है देश के समाज को उन्होने ही बनाना है, देश और समाज का उठाना और गिराना उन के हाथ में है। बड़े हो जाने पर मनुष्य को सुधारा नहीं जा सकता, जिस प्रकार का अभ्यासादि पड़ गया, जैसे बन गये, वैसे ही रहते है। पर बालकों को यथेष्ट रीति पर ढाल सकते हैं।

अतएव बालक के वैयक्तिक जीवन और भविष्यत् तथा समाज के भविष्यत् का आधार बाल्यावस्था मे उनकी रक्षा और शिक्षा पर है। इसी कारण से बाल शिक्षा का विषय बड़े महत्व का है, पाश्चात्य देशों में इस बात पर खूब ध्यान दिया जाता है।

ऋषि दयानन्द बालशिक्षा और रक्षा के महत्व को खूब समझते हैं।

ऋषि दयानन्द की सम्मति मे बालको को शिक्षा का आरम्भ तब से होता है जबकि अभी बालक गर्भ मे भी नही आता। अच्छी सन्तान पैदा करने के लिए माता-पिता का अच्छा होना आवश्यक है। माता-पिता का सन्तान पर पूरा 2 प्रभाव होता है "आत्मा वैजायते पुत्रः"। माता-पिता की शारीरिक मानसिक, आत्मिक दशा का सन्तान पर पूरा 2 प्रभाव होता है। अतएव ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास मे तथा अन्यत्र भी स्थान-स्थान पर लिखते हैं कि माता-पिता को

सन्तानोत्पत्ति के कार्य की पवित्रता और उत्तरदातृत्व को खूब समझते हुए भोजन छादनादि को नियमित रखना चाहिये, तथा मानसिक उद्वेगों को रोकना चाहिये, सदा प्रसन्न चित्त रहना चाहिये, तभी उत्तम सन्तान पैदा होगी। ऋषि दयानन्द ने इन बातों को लक्ष्य मे रख कर कई संस्कारों का विधान किया है, जो कि बालक के जन्म के आगे पीछे समय 2 पर किये जाते हैं, जिनका उद्देश्य माता-पिता की मानसिक शारीरिक दशा के सुधार और शुद्धि द्वारा या सीधे तौर पर बालक पर उत्तम प्रभाव डालना है।

ऋषि दयानन्द सन्तानोत्पत्ति के काम को बड़ा पवित्र और उत्तरदातृत्वपूर्ण समझते हैं। अतएव इस काल के लिये पहिले माता-पिता को योग्य बनने का आदेश किया गया है, अयोग्य स्थिर रोगी स्पृश्यव्याधि वालो को सन्तानोत्पत्ति का कोई अधिकार नही।

यह एक ऐसा आवश्यक सत्य है कि जिसका अभी पाश्चात्य देशो ने महत्त्व नही समझा, यद्यपि बड़े-बड़े डाक्टर इस सत्य को सिर पटक कर समझा रहे हैं।

## २. पहिली शिक्षिका माता है

अगस्त मास के (Modern review) मे देश मान्य लाजपतराय जी ने सयुक्त देश अमेरिका की शिक्षा प्रणाली की अनेक विशेषताएं बताते हुए लिखा है कि अमेरिका की शिक्षा प्रणाली मे सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वहा प्रारम्भिक पाठशालाओं मे तथा ग्रामर स्कूलों में बालकों को शिक्षा देने का काम बहुत कुछ स्त्रियों के हाथ मे है। विद्यालय विभाग मे पढाने वाले कुल 5,64,460 शिक्षको मे से 4,51,118 शिक्षिका स्त्रिये हैं। अर्थात् कुल शिक्षिको का 4/5 भाग से भी अधिक स्त्रियें हैं।

इसमे भी कारण है कि बचपन मे बालक की शरीर रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये, बालकों की शरीर रक्षा, उन माताओं से, जिन्होने कि उनको पैदा किया है, अधिक कौन कर सकता है? एक और भी बात है, बालक के हृदय मे स्वाभाविक प्रेम होता है, जो उससे प्रेम करता है उसके आधीन अपने को कर देता है, उस पर पूरा विश्वास करता है, उसका कहना मानता है। माता बालक को दण्ड के भय से नही अपितु प्रेम से अपनी ओर आकृष्ट करती है उसे उत्तम 2 शिक्षा देकर सुशील बना सकती है। इस प्रकार माताओं की देखरेख मे बालकों को शिक्षा देने से उनकी शारीरिक दशा अनायास ही सुधरेगी और वे सुशील बनेंगे।

मातृ शिक्षा के विषय में स० प्र० द्वितीय समुल्लास के आरम्भ मे "मातृमान्

पितृमान् आचार्यवान पुरुषो वेदा" इस वाक्य को उद्धत कर ऋषि दयानन्द लिखते हैं "जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता। इसलिए मातृमान् अर्थात् "प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्"। धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर जब तक विद्या पूरी न हो सुशीलता का उपदेश करें"।

## ३. बालक पर समाज का स्वत्व होना चाहिये

देश के सभी बालक सारे समाज के पुत्र हैं यदि बालक के माता-पिता उसकी रक्षा शिक्षा का प्रबन्ध नही कर सकते, या नही करते तो यह समाज का कर्तव्य है कि वह ऐसे बालकों की शिक्षा रक्षा आदि का प्रबन्ध करे।

यह उक्ति प्रसिद्ध है कि "मनुष्य सामाजिक प्राणी है"। अर्थात् मनुष्य स्वभाव से ही अपने जैसे लोगों के समूह मे रहना पसन्द करता है। मनुष्य की सब प्रसन्नताओं और उन्नतियों का केन्द्र समाज है। बिना समाज के एक व्यक्ति का रहना दूभर हो जाये, उसके लिए मनुष्य जीवन दु:खदायी बन जाये।

जब मनुष्य की उन्नति और सुख का दारोमदार समाज है तो आवश्यक है समाज को सुखदायी बनाया जाये। चूंकि समाज व्यक्तियों से बनता है अत: व्यक्तियों के उन्नत और सुखी होने से समाज उन्नत होगा, सुखी बनेगा।

शरीर के एक अंग के बिगडने से दूसरे अंग भी बिगड़ते हैं सारा शरीर ही दुःख उठता है इसी प्रकार यदि समाज मे कोई व्यक्ति अनपढ़ रह जाये तो उसका दुःख समाज को उठाना पड़ेगा। कई ग़रीब माता-पिता अपने नन्हें-नन्हें बच्चों से भी मज़दूरी करवाते हैं, और करवाते थे, जो समय कि बालक की शिक्षा शारीरिक मानसिक उन्नति का है वह समय यू कि खराब हो जाता है, जिसका दु:खदायी परिणाम सारी जाति को झेलना पड़ता है।

अतएव उन्च जातियां अपने प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान रखती हैं और विशेषत: बालकों का। चूंकि जो बिगड़ चुके सो तो बिगड़ चुके, पर भावी संतान का जिनकी कि अभी सुधरने की आशा है, जिनका बनना बहुत कुछ अपने हाथ में है उसका पूरा ध्यान रखा जाता है। आजकल पाश्चात्य देशों मे 6वा 7 वर्ष से लेकर 13 वा 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा बाधित है। तथा मुफ्त है।

यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बाधित शिक्षा का मुफ्त होना ज़रूरी है चूंकि निर्धन लोग शिक्षा का खर्च नहीं उठा सकते।

व्यक्ति, विशेषतया बालक और समाज के संबन्ध को ध्यान में रखते हुए, विद्वान् लोगों ने यह नियम बनाया है कि उन वैयक्तिक कार्यों में, जिनका कि प्रभाव प्रधानतया समाज पर पड़ता है, प्रत्येक व्यक्ति को समाज के हित ध्यान रखना चाहिये, अपनी स्वतन्त्रता को समाज के हाथ मे कर देना चाहिये। इसी में समाज का और व्यक्ति का कल्याण है। देश का प्रबन्ध इसी प्रकार चलता है। (देखो आर्यसमाज) का दसवां नियम)।

उपरोक्त नियम को ध्यान में रखकर समाज की उन्नति के लिये, देश के कल्याण के लिये, शिक्षा विषय में वैयक्तिक स्वतन्त्रता छीन ली जाती है और देश के सब बालकों को बाधित रूप से शिक्षा दी जाती है।

ऋषि दयानन्द बालक को समाज की सम्पत्ति समझते हैं, और अतएव देश के कल्याण की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित करना राज्य का कर्तव्य कहा है। स० प्र० तृतीय समुल्लास पृ० ३२ पर "कन्यानां सम्प्रदानंच कुमाराणाच रक्षणम्"। इस मनुवाक्य की व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि "इसमे राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पाचवें वा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर मे न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवे जो न भेजे वह दण्डनीय हो"।

## ६. गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

ऋषि दयानन्द के शिक्षणालय का नाम गुरुकुल है और शिक्षाप्रणाली को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली कहना चाहिये। फ्रैडरिक विलहैम अडास्ट फोबेल के बालोद्यान या Kinder garten की तरह "गुरुकुल" नाम भी बड़ा सार्थक है। इस कुल मे कम से कम २५ वर्ष तक निरन्तर विद्यार्थी को अध्यापक की देख-रेख मे रहना होता है और उसकी आज्ञानुसार काम करना होता है। इस शिक्षा प्रणाली मे निम्न नियम काम करते हैं।

(क) यह हर कोई जानता है कि सब बालको को एक सी रुचि और प्रवृत्ति नही होती। किसी का कथा कहानी मे मन लगता है और किसी का खेल कूद मे, एक की स्पर्शेन्द्रिय तेज होती है तो दूसरे की आंख वा श्रवणेन्द्रिय। अस्तु अध्यापक वा शिक्षक का काम यह है कि वह बालक को प्रवृत्ति के अनुसार उसको शिक्षा दे। बालक की रुचि के अनुसार शिक्षा देने से वह शीघ्र ही और चाव से बात को समझेगा।

अल्पकाल और अल्पायास में वह बहुत कुछ जान जायेगा। इसके विपरीत बालक की रुचि और प्रवृत्ति को अवज्ञा करके मनमानी शिक्षा देने में समय और श्रम अधिक लगेगा और बालक को मानसिक शक्तियों का ह्रास होगा। अतएव व्यक्ति और समाज का कल्याण इसी मे है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि के अनुसार शिक्षा दी जाये।

यह कोई सहज काम नहीं, इसके लिये बड़े चतुर विद्वान् अनुभवी शिक्षक की आवश्यकता है। अतएव ऋषि दयानन्द ने योग्य अध्यापक के चुनाव पर पूरा बल दिया है। स० प्र० पृ० २९ पर ऋषिदयानन्द लिखते है "......९वें वर्ष के आरम्भ मे द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल मे अर्थात् जहा पूर्ण विद्वान पुरुष और विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हो वहा लड़के और लड़कियो को भेज दे।" पुन: स० प्र० ३२ पर लिखते हैं—"जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावे" "किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हो वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं"।

(ख) अस्तु योग्य अध्यापक को चुन कर बालक को सर्वथा उसके आधीन कर देना चाहिये। बालक को सदा उसके निकट रहना चाहिये, जिससे कि गुरु बालक की प्रत्येक प्रविृत्ति को पहचान उसको ठीक रास्ते पर चला सके। इसी प्रकार १६ वर्ष की आयु के ऊपर जब बालक युवा अवस्था मे प्रवेश करता है उस वक्त भी उसको योग्य पथदर्शक की जरूरत होती है। १६ और २४ वर्ष की आयु के बीच का समय बडा भयानक होता है। अतएव ऋषि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य पर वीर्य रक्षा पर बडा जोर दिया है। ऋषि का अपना जीवन ही इस बात का प्रबल साक्षी है। ऋषिदयानन्द लिखते हैं कि माता-पिता को अपनी सन्तान को उपदेश देना चाहिये कि "जो तुम सुशिक्षा और विद्या के ग्रहणवीर्य की रक्षा करने मे इस समय चूकोगे तो इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नही हो सकता"। यही ऋषि दयानन्द की शिक्षा प्रणाली का आधार है और अभी तक इस सत्य सिद्धान्त को पाश्चात्य देशों ने नही पाया।

(ग) अमेरिका की शिक्षा प्रणाली की विशेषता बताते हुए मा० लाजपतराय जी मोडर्नरिव्यू मे लिखते हैं कि वहा धनी और दरिद्र सबके बालक एक साथ शिक्षा पाते है। पर ऋषिदयानन्द अपनी शिक्षा प्रणाली में और भी आगे बढ़ गये हैं और लिखते हैं कि "सब को तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राज कुमार हो—चाहे दरिद्र की सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये" (स० प्र० पृ० ३३)।

(घ) ऋषिदयानन्द शिक्षा विषय मे जाति, लिंग आदि का ध्यान छोड़ कर सब के लिए शिक्षा की आवश्यकता समझते हैं।

अतएव ऋषि दयानन्द ने अथर्ववेद के "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इस वाक्य की व्याख्या करते हुए स्त्रीशिक्षा पर पूरा बल दिया है "भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी हो और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर सग्राम घर मे मचा रहे और सुख कहा" ? इसी प्रकार यजुर्वेद के "यथेमां वाचं कल्याणीम्" मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषिदयानन्द ने अन्त्यज और नीच जाती वाले सबके लिए शिक्षा आवश्यक बताई है।

(ङ) ऋषि दयानन्द स्वतन्त्र विचारक थे, वे बालक को लकीर का फकीर, प्रत्येक बात पर "जी हुजूर" करने वाला नही बनाना चाहते थे वे बालक को स्वतन्त्र विचारक बनाना चाहते थे, अतएव वे लिखते हैं कि माता-पिता का कर्तव्य है कि वह सन्तान को उपदेश करें कि "यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि"।

## ५. शिक्षा कैसी होनी चाहिये ?

यह तो हम पहले लिख चुके हैं कि ऋषि दयानन्द भारतवासियो के लिये भारतीय ढंग की शिक्षा लाभकारी समझते थे। पर साथ ही वह वर्तमान संस्कृत शिक्षा प्रणाली का विरोध भी करते थे चूकि इसमे उपयोगी विषय कम है। नवीन ग्रन्थो मे बाल की खाल उतारी गई है। नवीन ग्रन्थो मे उद्देश्य के प्रतिपादन पर बल नही दिया गया प्रत्युत साधन पर वाद विवाद करने में ही सारा समय लगाया गया है। व्याकरण का उद्देश्य शब्दों का ठीक ठीक प्रयोग करना सिखाया है, व्याकरण साधन है उद्देश्य नही, पर हमारे पण्डित लोग बीस 2 तीस 2 वर्ष केवल व्याकरण पढने मे ही लगा देते हैं। अतएव ऋषि दयानन्द ने नवीन ग्रन्थो का विरोध कर प्राचीन ग्रन्थों को पढाने का अनुरोध किया है। ऋषि दयानन्द शिक्षा का उद्देश्य बालक को पूर्ण बनाना अर्थात् उसकी शारीरिक मानसिक आत्मिक उन्नति करना समझते हैं, ऐसे व्यक्तियों से ही समाज पूर्ण बनता है, ऐसे व्यक्ति ही अपना और समाज का उपकार कर सकते है।

आज कल ससार मे शिक्षा को बडा महत्त्व दिया जा रहा है। ससार को सभ्य जातियों मे इस समय घोरस्पर्धा है, प्रत्येक देश इस बात की ताक मे है कि कब दूसरा कमज़ोर हो और मैं उसे धर दबाऊं। इस जीवन सग्राम मे कुचले जाने से बचने के लिये, सग्राम में विजय पाने के लिये, शस्त्रास्त्रों की उत्तमता और अधिकता के साथ २ देशवासियों का शिक्षित होना भी आवश्यक समझा जा रहा है। सानफ्रान्सिस्कों की प्रदर्शनी के मुख्य द्वार पर निम्न वाक्य लिखे हुऐ हैं।

"The State that fails to educate, dooms its children to industrial subjugation to these states that do educate. More than once have nations lost their land for lack of Education."

अर्थात् जो देश अपने निवासियों को शिक्षित करने में पीछे रह जाता है वह अपने देश को अन्य देशों को व्यापारिक दासता की जंजीर में जकड़ता है। शिक्षा के अभाव के कारण प्रायः जातियों से उनके देश छिन चुके हैं।

आजकल संसार मे विजय पाने का एक नया शास्त्र निकल आया है वह व्यापार है। अल्प खर्च व मूल्य में वस्तुएं पैदा कर दूसरे देशों के व्यापार को मार दिया जाता है। पर इस काम के लिये लोगों का शिक्षित होना आवश्यक है। जो देश अधिक शिक्षित हैं जिसने विज्ञान में अधिक उन्नति की है वही सब पर व्यापारिक प्रभुत्व जमाता है। अतएव पाश्चात्य देशों में शिक्षा को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। पिछली शताब्दी में युरोप में पैस्टेलौजी, कौमिनस, फ्रेडरिक, विलहेम, अडास्ट फ्रोबेल प्रभृति शिक्षाशास्त्रज्ञ तथा बाल शिक्षकों ने जन्म लेकर वहां की शिक्षा प्रणालियों को बहुत उन्नत किया है। उन्होंने शिक्षा को विज्ञान (Science Educationists) का रूप दिया है, जिसे कि अल्प काल और श्रम मे शिक्षा दी जाती है। पाश्चात्य देशवासी शिक्षा के महत्व को समझते हैं। वे गुणी हैं अतएव उन्होंने उपरोक्त व्यक्तियों का खूब आदर किया है। वे उन्हें देवता समझते हैं। पर शोक है कि हमने ऋषि दयानन्द का उसके महान् उपकारों के सामने कुछ भी आदर नही किया।

नवीन भारत को बनाने में ऋषि दयानन्द का बड़ा हाथ है। आजकल के सब प्रचलित आन्दोलनों का आरम्भ ऋषि दयानन्द से होता है। ऋषि का शिक्षा विषयक आन्दोलन बड़े महत्त्व का और उपयोगी है। एक विद्वान् का कथन कि है "शिक्षा प्रचार ही निकट वर्ती भविष्यत् का नया सन्यास होगा। शिक्षक ही नये सन्यासी होंगे।" ऋषि दयानन्द ने सब प्रकार से अपना कर्तव्य निबाहा है, उसका अनुकरण करना हमारा कर्तव्य है।

(ब्र० देवराग १२ श्रेणी द्वारा साहित्य परीषद् के ऋष्युत्सव में पढ़ा गया।)
(सद्धर्मप्रचारक, भाग २७. कार्तिक तथा मार्गशीर्ष ५ संवत् १९७२ पृ० च से झ तक से साभार)

— 0 —

एक कहानी

# सद्भावना की शक्ति

ले० माननीय बलभद्र कुमार जी हूजा,
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

राजा और मंत्री सैर को निकले। गांव में एक ऊंचा आलीशान मकान नज़र आया। राजा ने कहा किसका है ? मंत्री बोला—सेठ जगन्नाथ का। राजा ने आज्ञा दी—चारो ओर तो गरीबों की झोंपड़ियां हैं। कितना अटपटा लगता है यह अमीरी का प्रदर्शन, इसे गिरा देना चाहिए।

अगले दिन मंत्री सेठ जी के पास गया; कहने लगा—महाराज ने आज्ञा दी है, आपका घर गिरा देना चाहिए।

सेठ बड़े पशोपेश में पड़ा। गुरु के पास सलाह मशवरे के लिए गया, गुरु ने पूछा, क्या राजा के प्रति तुम्हारे मन में दुर्भावना है ?

सेठ ने स्वीकार किया—हां महाराज ! गुरु ने कहा—तो इसे सद्भावना मे बदलने का यत्न करो। राजा के प्रति अच्छे भाव रखो।

कार्य कठिन था, परन्तु सेठ ने प्रयत्न किया—कुछ दिनों बाद राजा और मंत्री फिर उधर से गुज़रे। राजा ने वही मकान देखा—कहने लगा, कितना सुन्दर मकान है। मेरी प्रजा की समृद्धि का द्योतक है। कितना अच्छा हो कि अन्य लोगों के मकान भी ऐसे ही हों—किसका है ?

मंत्री बोला—महाराज, सेठ जगन्नाथ का।

राजा ने कहा—उसे प्रशस्ति पत्र प्रदान करो और राजमहल में उसे यदा-कदा आमंत्रित करते रहो।

— 0 —

# वैदिक रश्मियाँ

सम्पादक : श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय

## द्वितीय रश्मि

अग्निवृत्राणि जङ्घनद् ।।—सामवेद पू. मं. ४

संक्षिप्त अर्थ—(अग्नि.वृत्राणि[1] जङ्घनत्) अग्नि वृत्रों को मारता है।

अर्थ—प्रकाशस्वरूप तेजोमय प्रभु आत्मा पर आवरण डालने वाले सर्वविध वृत्रों-पापों वा अज्ञानों को मार देता है, समाप्त कर देता है।

**व्याख्या**—प्रथम रश्मि मे उस अग्निस्वरूप—ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, तेजःस्वरूप, ओज स्वरूप प्रभु से यह प्रार्थना की गई है कि वह आए, शीघ्र आएं, अब वह देर बिल्कुल न लगाएं क्योंकि अब उसके महत्त्व को हम हृदय से अनुभव करते हैं। वह इस रूप मे कि हमे ससार मे वृक्षों ने घेरा हुआ है, पापो ने हमारा घेराव कर रखा है, अज्ञानो ने अविद्या-धकारो ने हमे ऐसा अन्धा सा बना रखा है, तमोगुण ने हमे ऐसा अभिभूत सा कर रखा है, ऐसा आच्छादित सा कर रखा है कि हम चाहते हुए भी अब आगे बढ नही सकते। क्योंकि अब हमे राह दीखती ही नही, अब हमे मार्ग सूझता ही नही, अब हमें अपना पथ स्पष्ट प्रतीत ही नही होता। अतः अब हम प्रथम तो कुछ आगे ही नही बढ पाते, और अगर कुछ बढने का साहस करते भी हैं तो फिर हम कही अटकते हैं, कहीं भटकते हैं, कही लटकते है, कही गिरते हैं तो कही के कही जा पड़ते हैं। फिर भी साहस कर के जो हम पुनः उठते है और आगे बढते हैं तो हमारे ही ये पाप हमे आगे नहीं बढने देते, हमारे ही ये वृत्र-हमारी ही ये वासनाएं हमें आगे नहीं बढने देती। ये हमे कही अपने सुन्दर-सुन्दर रगों मे, कही अपनी नानाविध गन्धो में, कही अपनी सुरीली-सुरीली ध्वनिरूप झाड़-झकाड़ो में ऐसा उलझा लेती हैं कि फिर हम एक पग भी आगे नही धर पाते, एक पग भी आगे नही बढ़ पाते। यदि साहस करके हम कुछ बढ़ते हैं, तो छिल-छिल जाते हैं। आत्मा से न चाहते हुए भी हम इन से पिट-पिट कर कभी-कभी तो मृतप्राय हो जाते हैं। अगर

१. जङ्घनद्-हन् हिंसागत्योः (हन्तेर्यङ्लुडन्ता ल्लिडर्थे लिट्) पुनः पुनरतिशयेन भृशं वा हन्तीति जङ्घनीति तस्य लेटि रूपम् "जंघनत्" (इतश्च लोप·) भृशं हन्तो व्यर्थः।

कभी हम इन से हार मान कर इन के आधीन हो जाते हैं, तो तब तो समझो कि हमारा कचूमर ही निकल जाता है। फिर न तो हम में कुछ आत्मबल रह पाता है, न मनोबल और न ही शारीरिक बल ही रह पाता है।

अपनी इस दयनीय स्थिति को देख कर हम ने अपनी सहायता के लिए न जाने किन-किन का आश्रय लिया, न जाने किन-किन की शरण में गए। कभी हम सत्संगों में गये, कभी हम ने स्वाध्याय किया, कभी हम देवों विद्वानों तपस्वियों योगियों सन्यासियों की शरण में गए, इस में कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने हमें ज्ञान भी दिया, बड़े-बड़े उपाय भी बताए, पग-पग पर वे हमें स्नेह सहानुभूति और सहयोग भी देते रहे, पर फिर भी न जाने कैसे उन सहयोगी सहायक शास्त्रों एवं शास्त्रकारों विद्वानों ज्ञानियों योगियों तपस्वियों के संरक्षण में रहते हुए भी वे वृत्र आकर हम पर आक्रमण कर ही जाते थे—हम पर हमला बोल ही जाते थे और एक बार हमें तहस-नहस कर ही जाते थे—हमे तबाह और बर्बाद कर ही जाते थे।

यह सब देख कर हम सर्वथा एकांत और शान्त स्थान पर भी गए, वहां हम गिरि-गुहाओं में गिरि-कन्दराओं में भी घुसे, कुटि-कुटीरों में भी घुसे और द्वारों को भी सब प्रकार से हम ने बन्द कर लिया। यहा तक कि संसार की सर्वविध सुख-सुविधाओं को, सकलविध सुख-सम्पत्तियों को भी हम सब प्रकार से झटक और पटक कर आ गए। यहा तक कि संसार से एक प्रकार से हम ने अपने आप को सर्वथा ओझल सा भी कर लिया और बैठ गए हम गिरि-गुहा मे वा किसी कुटिया मे, यह सोच कर कि अब हमारे पास कौन आयेगा, कैसे आयेगा और क्यों कर आयेगा, पर प्रभु देव ! आश्चर्य तो तब हुआ कि जब हम घर-बार से-धन-वैभव से-विषय-विकारों से सैकड़ो-सहस्रों मील दूर आ बैठे हैं और वह भी गिरि-गुहाओं में बन्द हो कर बैठे हैं तो भी इन वृत्रों ने-इन पापों ने—इन विषय-विकारों ने हमारा पीछा नही छोड़ा। सचमुच तब तो हम अवाक् रह गए जबकि हमने इन्हें यहीं पर भी अपने सम्मुख विद्यमान पाया-अपने को हैरान और परेशान करते हुए पाया-अपने को तप्तन्सन्तप्त करते हुए पाया। उस समय हमारी इस दयनीय दशा को देख कर किसी अनुभवी सिद्ध पुरुष ने कहा— "हे भोले साधक ! ये सब आश्रय निर्बल है, अतः लेना है तो एक ही प्रभु का सबल सहारा लो, एक ही उस अग्नि स्वरूप, प्रकाशरूप, तेजोरूप, ओजोरूप, प्रभु का आश्रय लो और फिर उसे ही अपने हृदय की तड़प से पुकारो, अपने हृदय के आर्तस्वर से पुकारो। उस दिन समझो उस का तुम्हें सहारा मिल गया-जिस दिन तुम्हें आश्रय मिल गया-जिस दिन उसका तुम्हें आलम्बन मिल गया। फिर वह इतना श्रेष्ठ और ज्येष्ठ सहारा होगा कि जितना कोई दूसरा सहारा हो ही नही सकता। वह इतना ज्योतिर्मय है, प्रकाशमय है, तेजोमय है, ओजोमय है कि उतना कोई न आज तक

हुआ, न है, और न होगा......।" सचमुच जिस दिन हम उसका आश्रय ले लेंगे और वह हमारे साथ खड़ा हो जायेगा, जिस दिन उस का प्रकाश हमारे हृदय मे हो जायेगा, जिस दिन उसका तेज और ओज हम को तेजोमय और ओजोमय बना देगा, उस दिन फिर ये वृत्र-फिर ये विषय-विकार हमारी राह को रोकने वाले-हमारी राह मे रोड़े अटकाने वाले-हमे अटकाने-भटकाने और बीच मे ही लटकाने वाले, नहीं-नही हमे गिरा-गिरा कर बुरी तरह मारने वाले-हमारे रंग-रूप तेज और ओज को समाप्त करने और हमारे शरीर को अस्थिपजर मात्र बना देने वाले ये काम क्रोध आदि-आदि विषय-विकार तब "जगल में जैसे अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर ये सिंह चीते आदि भयंकर हिंसक प्राणी प्रथम तो दूर-दूर रहते है, और यदि दु:साहस कर के आगे भी बढ़ते हैं तो उस अग्नि मे भस्मसात् हो जाते हैं, ऐसे ही उस तेजोमय, ओजोमय परम प्रभु के हृदय मे देदीप्यमान हो जाने पर प्रथम तो वे समीप आते ही नही और अगर आते है तो उसमे वे भस्मसात् हो जाते हैं।

यह अग्निस्वरूप तेजोरूप प्रभु तो ऐसा है जो उन वृत्रों को ऐसी मार मारता है कि पुन कभी के सिर नही उठा पाते, पुन वे उपासक पर आक्रमण करने का साहस ही नही कर पाते। वह प्रभु वृत्रों को पुनः मारने वाले हैं, खूब मारने वाले है और ऐसे मारने वाले है कि फिर उनमे सिर उठान का भी साहस और शक्ति नही रहती। उसकी इस अद्भुत सामर्थ्य को देख कर ही तो हम उसे हृदय से पुकारते हैं – "कि हे प्रभो ! तू वृत्रहन्ता है-तू वृत्र विनाशक है। और फिर तू हमारा सर्वोत्तम सहारा है। सबसे बडा साहारा है, तेरे बल पर हमे पूर्ण भरोसा है। अतः हम तुम्हें पुकारते है कि—प्रभो तू आ, और ऐसा आ, कि फिर सदा हमारे हृदय मे विराजमान हुआ-हुआ हमारा सच्चा संरक्षक ही बन जा ताकि तेरी पावन छत्र-छाया मे अबाध गति से निरन्तर आगे ही बढते रहें।

## तृतीय रश्मि

अग्ने त्वा कामये गिरा। —सामवेद, पृ० मं० ८

संक्षिप्त अन्वयार्थ:—(अग्ने ! (अहं) गिरा त्वा (एव) कामये (हे प्रभो ! (मैं अब) वाणी से तुझे (ही) चाहता हू।

अन्वयार्थ :—अग्ने ! गिरा त्वा कामये) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! मैं उपासक अब अपनी वाणी से—अपनी स्तुतिमयी वाणी से केवल मात्र तुझे ही चाहता हूं।

व्याख्या—अग्नि के समान प्रकाशमान् भगवन् ! मैंने अपने जीवन को प्रकाशमान्

करने के लिये, ज्ञान ज्योति से ज्योतिर्मय करने के लिये, तेज से तेजस्वी बनाने के लिये, ओज से ओजस्वी बनाने के लिये, शुद्ध–पवित्र बनाने के लिये, आनन्दमय बनाने के लिये एक से एक बढ कर ज्ञानी विद्वान् तपस्वी योगी धर्मात्मा महात्मा सन्यासी को चाहा, उस का वरण किया, उस का शिष्यत्व अंगीकार किया, उस के चरणों पर पुनः पुनः बड़ी श्रद्धा-भक्ति से अपना यह मस्तिष्क रखा-अपना यह सिर धरा, अर्थात् पुनः पुनः उस को बड़ी नम्रता से झुक-झुक कर प्रणाम किया, यह सोच कर कि किसी प्रकार मेरा यह हृदय भी प्रकाशमान हो जाए, ज्ञान ज्योति से ज्योतिर्मय हो जाए और मेरी अविद्या की गांठ खुल जाए। पर नाथ ! वर्षों यह तमाशा करते रहने पर भी मेरे इस हृदय में वह प्रकाश हुआ नही, मेरे इस हृदय मे वह ज्ञान ज्योति जगी नही जिससे कि मेरे हृदय का तम-अन्धकार छिन्न-भिन्न हो जाता और मेरे हृदय का कोना-कोना जगमगा जाता।

नाथ ! इतना ही नही मैंने बड़े–बड़े वीरो का आश्रय लिया, बड़े-बड़े मल्लों का—पहलवानों का सहारा लिया, उन्हें पुकारा, बड़े-बडे तपस्वी योगी महापुरुषों को चाहा और चाहा ही नही वरन् उनके द्वारो पर जा-जा कर उनके चरण पकडे उनके सम्मुख गिड-गिडाया, यह विचार कर कि किसी प्रकार मैं भी बलवान बन जाऊ, तेजोमय और ओजोमय बन कर सर्वविध भयो से मुक्त हो जाऊं, सर्वविध आपत्तियों को पैरों तले रोंध–रोध कर आगे बढ जाऊ। पर नाथ ! यह सब कुछ कर लेने पर भी वह सब कुछ हुआ नही।

हे प्रभुवर ! मैं यह नही कहता कि इन सब ने मुझे अपनाया नही, इन सब ने मुझे स्नेह-सहानुभूति एवं सहयोग नही दिया। यह सब कुछ इन सब ने मुझे दिया, खूब दिया, दिल खोल कर दिया, बड़े लाड़ और प्यार से दिया, और यह समझ कर दिया कि मुझ बिचारे पथिक को कही पथ मिल जाए-मुझ राही को कही राह मिल जाए, मुझे कही प्रकाश मिल जाए, कही शारीरिक बल मिल जाए, मनोबल मिल जाए, बुद्धिबल मिल जाए, आत्मबल मिल जाए,। मैं यह भी नही कह सकता कि मुझे यह सब मिला नही। मुझे यह सब कुछ मिला, और खूब मिला, तथा इतना मिला कि सम्भवतः मैं इस का पात्र भी था या नही-यह मैं नही कह सकता ! जो कुछ भी मुझे इन सब से मिला, मैं उस का भी मूल्य समझता हूं, क्योंकि आज जो कुछ मैं हू उसी के बल पर मैं हूँ नहीं तो मुझ अकिंचित् भिक्षुक के पास था भी क्या ? अतः मैं इस सब के लिये इन सब के प्रति कृतज्ञ हूँ, रोम-रोम से कृतज्ञतावश मैं इन सब के प्रति नतमस्तक भी होता हूँ। पर हे प्रभुवर ! फिर भी मुझे वह अद्भुत प्रकाश, वह अनुपम ज्ञान, वह दिव्य तेज और वह उत्तम ओज नही मिला, वह शान्ति और आनन्द नहीं मिला, वह परम प्यारा प्रभु नही मिला कि जिस के परिणामस्वरूप मैं झूम जाता, मैं

विभोर हो जाता, मैं कृतकृत्य हो जाता, मैं सर्वथा कृतार्थ हो जाता। अतः हे ज्ञानप्रकाश के, तेज और ओज के, शान्ति और आनन्द के परम स्रोत प्रभुवर ! अब मैं तेरे दर पर आया हूं, अब मैं तेरे द्वार पर आया हूं और तेरे ही द्वार पर अब मैं अलख जगाए हुए हूं। इसलिए कि अब मैं तुझ को ही चाहता हूं, तुझको ही पुकारता हूं, भीतर-बाहर से तुझे चाहता हूं, यह विचार कर के कि तुझ को पाने से मैं वह सब कुछ पा जाऊंगा। जिस के लिये कि मैं अपने घर से निकला था। नाथ ! तू मेरी यह पुकार सुन लेना और मुझे निहाल कर देना।

—वैदिक रश्मियां, पृ० १६ से २४ तक; से उद्धृत।

— 0 —

# सुख और दुःख

ले० डा० विजयपाल शास्त्री, प्रवक्ता, दर्शन विभाग।

परिवर्तनशील इस विश्व में सुख और दुःख की आखमिचौली का खेल मानव जीवन के रंगमंच पर सदा से होता आया है। परिवर्तन का यह सिलसिला इतना सत्य और शाश्वत है जितना यह विश्व और इसका निर्माता। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख यह नियम अविच्छिन्न है। सुःख और दुःख का यह मिथुन अपरिहार्य ही नही आवश्यक भी है। सुख के पश्चात् दुःख का आगमन न हो तो सुख की महिमा ही विनिष्ठ हो जाये। दिन के पश्चात् काली अन्धेरी रात, वसन्त के पश्चात् पतझार, शीत के पश्चात् ग्रीष्म आदि प्राकृतिक परिवर्तन इसी की ओर इंगित करता है। सुख जड़ता प्रदान करता है और दुःख कर्तव्य का स्मरण कराता है। सुख मनुष्य को उसके "स्व" से दूर कराता है, दुःख अपने और परायों की पहचान कराता है। अतः केवल सुख को ही आत्मीय बन्धु समझ कर सदैव उसकी कामना करनी चाहिये। जब दुःख का परिहार सम्भव है ही नही, तब क्यों न मुस्करा कर उसका स्वागत करें।

वस्तुतः देखा जाये तो दुःख भोगने के पश्चात् ही सुख भोगने में अधिक रस मिलता है। दुःख का अनुभव कर चुकने के अनन्तर जब मनुष्य सुख प्राप्त करता है, निर्धनता से समृद्धि की ओर आता है, व्याधि का परित्याग कर आरोग्यलाभ करता है, बन्धन के अनन्तर मुक्ति की सांस लेता है, तब ही वह सोचता है कि सचमुच आज मेरा भाग्योदय हुआ, आज ही पुण्यलताएं पलवर्ती हुई, गुरुजनों के आशीर्वचन आज ही समृद्ध हुए। वही व्यक्ति वास्तव मे सुख को सुख रूप मे पहचानता है, उसकी दुर्लभता को स्वीकार करता है और उसके लेशमात्र को भी बहुत समझता है। धन की सार्थकता और दारिद्रय की अनर्थता की परख वही कर सकता है जो दाने दाने के लिए तरस चुका है, भूख का साक्षात्कार कर चुका है और संकटों की विकटता से परिचय कर चुका है। जितना गहन अन्धकार होगा, दीपक की शिखा उतनी ही कान्तिमयी होगी।

जो व्यक्ति समृद्धि में जन्मा है, विशाल परिवार से परिवृत होकर पला है, सबसे अर्चित और सेवित होकर बडा हुआ है, समूल्य वस्त्रों और अलंकारों से विभूषित हो चुका है। महार्घ्य शय्याओं पर सोया है, नाना रसों से स्वादु भोजन पानादि का सेवन कर चुका है, ऐसा व्यक्ति समय के परिवर्तन से जब दरिद्र होता है तो उसकी दशा बड़ी दयनीय होती है। वस्त्रालंकारहीन हो कर वह पृथ्वी पर सोता है, कठिनता से भोजन

प्राप्त करता है, जैसे तैसे लोकयात्रा का निर्वहण करता है, पुरातन सम्पदा का ध्यान कर करके असह्य वेदना का अनुभव करता है। एक प्रकार से वह शरीर से जीवित रहता हुआ भी वस्तुतः निर्जीव धौंकनी के समान श्वास लेता है। सुख और दुःख के पौर्वापर्य का बड़ा मनोहारी चित्र कविवर शूद्रक ने इस पद्य मे खीचा है—

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते,
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखेन यो याति नरो दरिद्रतां
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ॥

मानव जीवन की यह कैसी विडम्बना है कि सुख और दुःख के अहर्निश गतिमान् इस चक्र को आज तक कोई रोक नही पाया। सरस्वती के पारदृश्वा कविकुल गुरु कालिदास को भी "कस्यात्यन्तं दुःख मे कान्ततो वा" कह कर सुख दुःख के परिवर्तन की अपरिहार्यता को अंगीकार करना पड़ा। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह परिवर्तन इतनी धीमी गति से होता है कि पदचाप भी श्रवण गोचर नही होती। काले कुंचित केश किस समय वार्द्धक्य की श्वेत दाढो में जकड़ लिये जाते हैं, खबर भी नही होती। कमनीय कंचन कामा का रंग कब उड़ गया? पता भी नही चलता। पता उस समय चलता है जब जीवन की गागर रीती हो जाती है, पंछी खेत चुग गये होते हैं। रह जाता है केवल पश्चात्ताप। पन्त के शब्दों मे—

अरे वे अपलक चार नयन
आठ आंसू रोते निरुपाय।
उठे रोओं के आलिगन,
कसक उठते काटो से हाय ॥

दुःख के दिवस बिताये नही बीतते। सुख के मादक क्षणों की गति बड़ी तीव्र होती है। न दिन के प्रहरों का पता चले न रात्रि के—"अविदित गत यामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।" दुःख के क्षणों में चित्त अतीत काल की गहराइयों में खो जाता है। प्रत्येक रमणीय वस्तु कांटों सी चुभती है। पुरातन अनुभूत शीतल मन्द बयार, चांदनी से स्नात रात्रियां, प्रणय परिहास की बातें, सभी कुछ शूल सम लगता है। "प्रसाद" का भी कुछ ऐसा ही अनुभव है :—

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा।
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा ॥

लोक सुख कामना करता है, दुःख से उद्विग्न होता है किन्तु मेरी दृष्टि में सुख इतना अनुपादेय नहीं है। और चाहे कोई लाभ न हो किन्तु दुःख की यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि इसमे अपने और परायों की पहचान हो जाती है तुलसीदास कहते हैं—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपत्काल परखिये चारी॥

सचमुच धैर्य, धर्म, मित्र और पत्नी की परीक्षा संकटकाल मे ही होती है। आप में जितनी सहिष्णुता है, कर्तव्य के प्रति आप कितने निष्ठावान् हैं, कौन सन्मित्र है और कौन आस्तीन के सांप हैं, आपकी पत्नी कितनी आपकी हितैषिणी है, इन सब की पहचान आपत्ति काल ही कराता है। ऐसे दुःख को स्पृहणीय न कहूं तो क्या कहूं?

यदि आप चाहते हैं कि दुःख आपके जीवन मे न आये, सुख की ही छाया में आपका समय बीते तो इसका निदान सुख के क्षणो मे ही खोजना होगा। प्रायः होता यह है कि सुख-संवेदन काल में मनुष्य यह भूल जाता है कि अपुण्याचरण के तरु पर दुःख रूपी फल भी कभी लगेंगे, जिन का स्वाद वपन कर्ता को चखना पडता है। विभूति के मद मे परकीय वेदना का संवेदन नही होता। उस समय मानव वन्दनीयो का तिरस्कार करता है, अपूज्यों को पूजता है और सदाचार का उपहास करता है। जब ये अशुभ कर्म दुःख रूप फल देने के लिए उन्मुख होते हैं तब इनके अनौचित्य का ज्ञान होता है किन्तु उस समय जीवन का सामर्थ्य-काल बीत चुका होता है। वार्द्धक्य शरीर को अशक्त कर देता है, इन्द्रिया क्षीण हो जाती हैं। तब वह पंक निमग्न गौ के समान केवल विलाप करता है। इसलिये भर्तृहरि कहते है—

यावत् स्वस्थमिद कलेवर गृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
संदीप्ते भवने तु कूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

जब तक यह शरीर स्वस्थ है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रिय शक्ति अक्षुण्ण है, और आयु शेष है, तभी तक आत्म-कल्याण मे विद्वान् को प्रयत्न करना चाहिये। घर मे आग लग जाने पर कुआं खोदने से क्या लाभ?

# पुस्तक-समीक्षा

| | | |
|---|---|---|
| पुस्तक का नाम | ... | जीवन और सुख |
| लेखक | ... | शिवानन्द-प्रिंसिपल |
| | | देव नागरी इंटर कालेज, मेरठ |
| प्रकाशक | ... | सर्वसेवा संघ, राजघाट वाराणसी। |
| पृष्ठ संख्या | ... | 310 |
| मूल्य | ... | दस रुपए |

उपर्युक्त पुस्तक उस परम्परा में आती है जो अंग्रेजी भाषा के लेखकों मे परम प्रचलित रही है। डेल कार्नेगी जैसे लेखकों की इस प्रकार की पुस्तकें संसार में सब से अधिक संख्या में बिकने वाली पुस्तकों में से हैं। हमारे देश में सुख केवल आध्यात्मिक चिन्तन मे ही माना जाता रहा है। यहां तक कि सन्त-कवियो ने तो सुखकी अपेक्षा दुःख को ही अधिक महत्त्वपूर्ण माना है, यथा—

सुख के माथे सिल परैं नाम हिये ते जाय।
बलिहारी वा दुःख को पल पल नाम रटाय॥

आधुनिक जगत मे जबकि चारों ओर अशान्ति का वातावरण छाया हुआ है सुख और शान्ति की खोज की आवश्यकता का अनुभव होना स्वाभाविक है।

प्रस्तुत लेखक ने बड़े परिश्रम के साथ पुस्तक मे सामग्री का संकलन किया है। उसने अपनी विचारधारा को निम्नांकित अध्यायों में रखा है।

१. मानसिक तनाव से मुक्ति
२. ध्यानदीप
३. मानव मे आध्यात्मिक संप्रेरण
४ स्वान्तः सुखाय
५. गुडाकेश
६. राम की विनयशीलता

पुस्तक मे सात्विक जीवन की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है साथ ही उच्चकोटि की सामग्री प्रस्तुत की गई है। युवको के चरित्र-निर्माण हेतु पुस्तक परमयोगी है।

( सम्पादक )

— 0 —

# राष्ट्रमंडलीय देशों के कुलपति सम्मेलन में भाग लेने के हेतु इंग्लैंड गए हुए गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के कुलपति माननीय बलभद्र कुमार जी हूजा का पत्र

## माननीय श्री बलभद्र कुमार हूजा, कुलपति द्वारा डबलिन से लिखा गया पत्र दिनांक १०.८.८३

" मैं ३ अगस्त को शाम को लदन पहुँच गया था। १४ को कैम्ब्रिज चला गया। वहां सेंटर श्राव साऊथ एशियन स्टडीज देखा। उसके सचिव डा० कार्टर से भेंट हुई। साऊथ एशिया और भारत पर उनका पुस्तकालय अप-टू-डेट है। इस नगर में लगभग दो दर्जन कालेज है। कई तो १४वी १५वी शताब्दी में स्थापित हुए हैं। विशेषकर ट्रिनीटी कालेज देखा। इसे अष्टम हेनरी ने १५४६ मे स्थापित किया था। इसकी लाईब्रेरी भी बहुत विख्यात है। इसमे ९०,००० पुस्तके है। न्यूटन, बकेन, बाबरम, थेकरे के धडो के बुत लगे है। टेनीसन, मैकाले, ड्राइडन भी यहा के विद्यार्थी रहे हैं। ठहरने को कालिज में बहुत सुन्दर प्रबन्ध था। उस कालिज के अध्यक्ष से भी मिला जो कानून पढाते हैं। अगले रोज वापिस लंदन आ गया। ६ को इण्डिया हाऊस मे प्रो० रामलाल पारीख से मुलाकात हुई। फिर हम भारतीय हाई कमिश्नर श्री सैयद हुसेन से मिले। उसी दिन रात को डबलिन के लिए रवाना हुए। यहा भारत के डैलीगेशन मे १४ सदस्य है। दयाल बाग की डा० शेरी भी हैं। भारतीय डैलीगेशन का ज़ोरदार स्वागत हुआ। टी० बी० और रेडियो ने भी खूब चर्चा की। कल रात भारत के राजदूत ने बुलाया था, आज नगर के लार्ड मेयर ने।

८ को सम्मेलन का आरम्भ हुआ। ४१ देशों से ६०० प्रतिनिधि आये हुए हैं। लार्ड मेयर ने डेलीगेटों का स्वागत किया। शिक्षा मन्त्री श्रीमति हसी ने शुभारम्भ किया। ट्रोनीडाड के फादर पैंटन ने मुख्य भाषण दिया और उन्होंने बताया कि किस प्रकार वह गरीब पिछड़े हुए वर्ग में जागरण पैदा कर रहे हैं। उन्होने बतलाया कि युवा लोग सम्मान से जीना चाहते हैं और चाहते हैं कि उन्हें कोई अपनाये। सभी मनुष्य बराबर हैं। साथ में सभी निराले हैं। सभी चाहते हैं उनका सम्मान हो, उन्हें बराबर हिस्सा मिले। उन्हें कोई दुतकारे नहीं। दो दिन छोटे ग्रुपों मे बातचीत होती रही। सभी की सम्मति रही कि विश्वविद्यालयों को लोगों के बीच में आकर प्रकाश

फैलाना चाहिए—अन्धकार, अन्धविश्वास, अज्ञान मिटाना चाहिए अन्यथा विश्व-विद्यालय के अस्तित्व का कोई सार नही। आज हम ट्रिनिटी कालेज डबलिन देखने गये, यह १५६२ में एलिजाबेथ प्रथम द्वारा स्थापित हुआ था। वहां के प्रोवोस्ट (वाइस चासलर) डा. वाट्स से मिले। यहां का पुस्तकालय भी बहुत प्रसिद्ध है। इसमे २० लाख पुस्तकें हैं। इनकी बाइबिल "बुक आव कैल" कहलाती है। उसका पुराना संस्करण ८०० ई. सन् का यहां रखा है। उसे देखने हेतु दर्शनार्थियो का भीड़ लगी हुई थी। सर्वत्र, वहा क्या कैम्ब्रिज मे, क्या लंदन में, क्या गुलाब की, अन्य फूलों की क्यारियां देखने आती हैं। लोग सभ्यता से क्यू में प्रतीक्षा करते हैं। ड्राइवर एक-दूसरे को सिगनल देकर आगे बढते हैं। नियमानुसार रास्ता देते हैं। सफ़ाई का विशेष ध्यान रखते हैं। हा, अब सफाई का वह स्तर नही रहा, जो २० वर्ष पहले था।

(कुलसचिव महोदय से प्राप्त प्रतिलिपि से उद्धृत)

— 0 —

# क्या सिख हिन्दू नहीं हैं ?

## ले० माननीय वीरेन्द्र जी

प्रात: का भूला सायं को वापिस आ जाए तो उसे भूला नही कहते।

यह ख्याल मुझे उस समय आया जब मैंने शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के प्रधान सरदार गुरचरन सिंह टोहरा का वह वक्तव्य पढा जिस मे उन्होंने हिन्दू सिख एकता पर बल दिया है। इसमे उन्होने कहा है कि :—

१. सिख इस बात हर गौरव अनुभव करते है कि गुरु साहेबान ने सिखों को हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए पैदा किया था। इसलिए हिन्दू और सिख मे किसी प्रकार के टकराव का कोई सवाल पैदा नही होता।

२. अकाली दल जो लड़ाई लड रहा है वह भारत सरकार के विरुद्ध है। अगर अकाली इस लड़ाई के माध्यम से सारे पंजाब के लिए न्याय प्राप्त कर सके तो सब को लाभ होगा।

३. हिन्दू और सिख एक दूसरे से अलग नही किए जा सकते। किसी प्रकार का विषाक्त प्रचार इनके भाइयो जैसे सम्बन्धो मे दराड पैदा नही कर सकता।

४. सिखो को इन्दिरा कांग्रेस के झांसे मे न आना चाहिए और अपनी परम्परागत सहिष्णुता एव प्रेम से हिन्दुओ का विश्वास जीतने का प्रयास करना चाहिए।

५. हिन्दू साधारण रूप मे और सिख विशेष रूप से प्रत्येक स्थिति मे एकता बनाए रखने का प्रयास करें। उन्हें चाहे कितना आवेश दिलाने का प्रयास किया जाए।

मैंने टोहरा साहब का यह वक्तव्य पढ़ा तो मुझे जहा कुछ आश्चर्य हुआ वहां अत्यधिक प्रसन्नता भी हुई। मैं बहुत देर तक यह सोचता रहा कि क्या यह वही व्यक्ति कह रहा है जिसने २६ अक्तूबर १६७८ को लुधियाना में अ. भा. अकाली सम्मेलन में पहली बार दो कौमों का विचार पेश किया था। जिसने कहा था कि भारत में एक

नही कई कौमें बसती हैं और जिसने रूस के संविधान की धारा ७६ को उद्धृत करते हुए कहा था कि अगर रूस के एक राज्य को अलग होने का अधिकार मिल सकता है तो भारत मे हमें यह अधिकार क्यों नही मिल सकता।

सरदार गुरचरण सिंह टोहरा के इस भाषण ने वह विवाद शुरू कर दिया था जिसका परिणाम आज हम देख रहे हैं। अगर अकाली यह कहे कि केन्द्र और राज्यो के सम्बन्धो पर पुर्नविचार होना चाहिए तो इस पर किसी को आपत्ति नही हो सकती। यह तो और भी कई पार्टिया कहती है। अकालियो की इस मांग का विरोध और इसी के साथ आनन्दपुर साहब के प्रस्ताव का विरोध उस समय शुरू हुआ था जब श्री गुरचरण सिंह टोहरा ने कहना शुरू किया था कि भारत में कई कौमे आबाद हैं। और उन्हें उसी तरह अलग होने का अधिकार मिलना चाहिए जिस तरह रूस मे वहा की विभिन्न कौमों को मिला हुआ है। टोहरा साहब ने बार-बार तीन शब्दों का प्रयोग किया है वह हैं Nation-Nationalities और Multi-National जब एक व्यक्ति इस तरह की बाते करता है और साथ ही यह भी कहता है कि हमे अपना एक ऐसा सविधान बनाने का अधिकार होना चाहिए जिसमे "खालसा का बोलबाला हो" तो इसके अर्थ क्या है? हिन्दुओ की ओर से अगर आनन्दपुर साहब प्रस्ताव का इतना विरोध हो रहा है तो इसका भी एक कारण यही है। केन्द्र और राज्यो के सम्बन्धो पर पुर्नविचार पर किसी को आपत्ति नही हो सकती।

प्रतीत होता है कि टोहरा साहब को अपनी भूल का अनुभव होने लगा है। अब कहते हैं कि हिन्दू और सिख एक हैं। उन्हें कोई अलग नही कर सकता। उन्होंने सिखों से यह भी कहा है कि वह अपनी परम्परागत उदारता और सहिष्णता के अनुसार हिन्दुओं का विश्वास प्राप्त करने का प्रयास करें।

मैं टोहरा साहब के इस वक्तव्य का स्वागत करता हूं और उन्हें इसके लिए बधाई देता हूं। इसलिए मैंने लिखा है कि प्रातः का भूला सायं तक घर आ जाए तो उसे भूला नही कहते। अगर अब भी टोहरा साहब और उनके साथी यह समझ सके कि हिन्दू और सिख एक दूसरे से अलग नही हो सकते और वह उन अर्थों मे कभी भी दो कौमें नही बन सकती जिन अर्थों मे मुहम्मद अली जिन्ना ने हिन्दू और मुसलमान को दो कौमे बना दिया था तो पजाब की कोई समस्या नही रहती। हिन्दू और सिख एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिला कर पंजाब के अधिकारो के लिए लड सकते हैं। किन्तु जब तक दो कौमों की बात होती रहेगी उस समय तक कोई समझौता सम्भव नहीं है। अगर हिन्दू एक अलग कौम है तो उन्हें भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ना पड़ेगा।

सरदार गुरचरण सिंह टोहरा ने कहा है कि हिन्दू और सिख एक हैं। वह एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। काश ! कि यही कुछ उन्होंने १६७८ में कहा होता तो आज पंजाब के हालात कुछ और होते। मैं तो देर से यह कहता आ रहा हूं कि हिन्दू और सिख एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। हमारे धर्म, हमारे इतिहास, हमारी संस्कृति ने इन दोनों को इस तरह बांध रखा है कि कोई शक्ति इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकती। शायद कुछ बातें टोहरा साहब भूल गए हों उन्हें आज फिर याद दिलाना चाहता हूँ।

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहब में ३३० बार वेदों का उल्लेख हुआ है। जो कुछ गुरु साहेबान ने वेदों के विषय में लिखा है यदि मैं वह सब पेश करने लगूं तो ऐसा लगेगा कि शायद आर्य समाजियों को भी वेदों मे इतनी श्रद्धा नहीं जितनी कि गुरु साहेबान को थी। जब श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने यह लिख दिया कि चारों वेद ब्रह्मा ने अर्थात् परमेश्वर ने बनाए हैं तो शेष क्या रह गया।

२. गुरु गोविन्द सिंह जी ने लिखा है कि गुरु नानक देव जी का जन्म बेदी परिवार में हुआ था और बेदी वह थे जिनके घरों मे बेदों का पाठ हुआ करता था।

३. श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपना सम्बन्ध भगवान राम के सूर्यवंशी कुल से जोड़ा है। गुरु नानक देव जी बेदी थे, जिनके घर वेद पाठ हुआ करता था और गुरु गोविन्द सिंह सोढी थे जिनके पूर्वज सूर्यवंशी हुआ करते थे।

४. शायद इसीलिए गुरु तेग बहादुर जी ने अपने बलिदान से पूर्व जो पत्र अपने बेटे को लिखा था उसमें उन्होने कहा था कि :—

संग सखा सब तज गए कोई न निभयोसाथ
कहो नानक इस विपद मे टेक एक रघुनाथ

यह कौन से रघुनाथ थे जिन्हें गुरु महाराज ने याद किया था। हमारे धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास में रघुनाथ तो रघुकुल शिरोमणि भगवान राम को ही कहा गया है। गुरु महाराज ने अन्तिम समय मे उन्हें ही याद किया था।

५. श्री गुरु ग्रन्थ साहब में, वेद, राम, कृष्ण, हरि, नारायण, मधुसूदन इन का बार-बार उल्लेख हुआ है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इनका सम्बन्ध मुसलमानों से नहीं केवल हिन्दुओं से है अगर ग्रन्थ साहब मे इन की चर्चा बार-बार हुई है तो क्या इसमें कोई सन्देह रह जाता है कि गुरु साहेबान की दृष्टि में हिन्दू और सिख

में कोई अन्तर न था। यह तो बाद में कुछ स्वार्थी लोगों ने राजनीति के चक्कर में पड़ कर पैदा किया था।

६. गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपनी आत्मकथा "विचित्र नाटक" हिन्दी में लिखी थी। इसीलिए उनके प्रसंग में कहा गया है कि हिन्दी साहित्य में वीर रस का इतना बड़ा कवि और कोई पैदा नहीं हुआ और उन्होंने कृष्ण अवतार, राम अवतार, चण्डी चरित्र, चौबीस अवतार और हिन्दू धर्म तथा हिन्दू संस्कृति बारे इतना कुछ लिखा था जितना किसी हिन्दू ने भी न लिखा हो। हिन्दू संस्कृति के लिए उन्हें जितनी श्रद्धा थी उसका अनुमान उन द्वारा लिखित राग सोरठी के इन शब्दों से लगाया जा सकता है :—

प्रभु जू तो कह लाज हमारी
नीलकंठ नर हरि नारायण नील वसन बनवारी।

क्या अब भी कोई सन्देह रह जाता है कि गुरु साहेबान हिन्दू थे या नहीं।

हमारे अकाली मित्र यह कहते नहीं थकते कि वह हिन्दू नहीं हैं। जब उन्हें कोई हिन्दू कहता है तो वे उससे चिड़ते हैं। मेरी यह धारणा रही है और अब भी है कि किसी को जबरदस्ती हिन्दू नहीं बनाया जा सकता। यदि अकाली इस बात पर अड़े हुए हैं कि वे हिन्दू नहीं हैं तो हम बार-बार उन्हें यह कह कर क्यों परेशान करें कि वे हिन्दू हैं। सिख रहते हुए भी वह हमारे वैसे ही भाई हैं जैसे कि हिन्दू। हिन्दुओं में भी तो आर्य समाजी सनातन धर्मी और जैनी जैसे कई विभिन्न समुदाय हैं। यदि हम सब मिल कर चल सकते हैं तो सिखों के साथ क्यों नहीं चल सकते। या सिख हमारे साथ क्यों नहीं चल सकते। इसलिए मैं कभी भी इस बात पर जोर नहीं देता कि सिख हिन्दू हैं।

लेकिन गुरु नानकदेव जी से लेकर गुरु गोविन्द सिंह जी तक जितने गुरु हुए हैं उनमें और आज के सिखों में हमें कुछ न कुछ अन्तर अवश्य करना पड़ेगा। जो कुछ गुरु साहेबान ने किया वह सब कुछ हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए किया था। वास्तविकता यह है कि वह हिन्दू धर्म के प्रति समर्पित थे। अपने इस दृष्टिकोण की पुष्टि के लिए उनके जीवन की कुछ घटनाएं आगे चल कर प्रस्तुत करूंगा। यहां तो टोहरा साहब की जानकारी के लिए मैं अपने इतिहास की केवल दो बातें उन्हें याद दिलाना चाहता हूं। पहली यह कि श्री गुरु तेग बहादुर जी महाराज ने अपना बलिदान हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए ही दिया था। उन्हें किसी ने औरंगजेब के पास जाने के लिए विवश नहीं किया था। यदि किसी ने उन्हें थोड़ी बहुत प्रेरणा दी थी तो उनके ६ वर्ष के बेटे

गोबिन्दराय ने दी थी। जब उनके बेटे ने उनसे कहा कि इस समय धर्म की रक्षा के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है तो गुरु तेग बहादुर कह सकते थे कि हमारा हिन्दुओं से क्या सम्बन्ध। यह मरते हैं तो मरने दो। काश्मीर के जो पंडित उनके पास आए थे उनसे वह कह सकते थे कि मैं तुम्हारी मदद तब करूंगा यदि तुम सब पहले सिख बन जाओ। लेकिन उस समय तक तो खालसा पंथ सजाया ही नहीं गया था। इसलिए यदि एक मिनट के लिए यह मान भी लिया जाए कि सिख हिन्दू नहीं हैं तो इसका यहअभिप्राय हुआ कि जब तक गुरु गोबिन्द सिंह ने खालसा पथ नही सजाया उस समय तक तो सब हिन्दू ही थे। और सम्भवतः यही कारण था कि गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज ने कहा था :—

"सकल जगत् मे खालसा पथ गाजे
जगे धर्म हिन्दू सकल भंड भागे"

यदि सरदार गुरचरन सिंह टोहरा गुरु गोबिन्द सिंह की भावनाओं को ठीक तरह से समझने को तैयार हो तो जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है। इसका अभिप्राय है कि गुरु गोबिन्द सिंह की दृष्टि में खालसा पंथ और हिन्दू धर्म यह दोनो एक थे। जहां वह यह कहते हैं कि सकल जगत् मे खालसा पंथ गाजे, साथ ही वह यह भी कहते हैं कि जगे धर्म हिंदू। वह हिंदू धर्म को जगाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने खालसा पथ सजाया था आज के अकाली इसे यदि समझने को तैयार नही तो इसका कोई इलाज नही। इसीलिए मैं कई बार कहा करता हूं कि अकालियो और सिखो मे भेद करना पड़ेगा। अकाली तो गुरु साहेबान के उपदेशो से इधर-उधर हो सकते है और आज हो भी रहे हैं। कोई सिख नही हो सकता। जो भी गुरु का सच्चा सिख है उसे गुरु गोबिन्द सिंह जी की यह बात माननी पड़ेगी कि "सकल जगत् मे खालसा पंथ गाजे। और जगे धर्म हिन्दू सकल भड भागे।"

श्री गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म पटना मे हुआ था। उनका पालन-पोषण आनन्दपुर साहिब मे हुआ। और उन का देहान्त महाराष्ट्र के एक स्थान नादेड़ मे हुआ था। इसलिए सारा भारत ही उनकी जन्मभूमि थी। हमारे अकाली दोस्त तो अपने आपको पंजाब तक सीमित रखना चाहते है लेकिन दस के दस गुरु साहेबान सारे देश मे घूमते रहे और अपने धर्म का प्रचार करते रहे। गुरु नानक देव जी तो इरान और इराक से होते हुए मक्का और मदीना भी जा पहुचे थे। पाठकगण आप जरा अनुमान लगाएं कि गुरु साहेबान किस सीमा तक विशाल हृदय और विशाल दृष्टि रखते थे। वह स्वयं को एक छोटे से कुएं में बन्द करना नही चाहते थे। सारे भारत को वह अपना देश समझते थे। इसलिए उन्होंने जगह-जगह गुरुद्वारे बनाए थे। उनके समय में

कभी किसी ने खालिस्तान की बात नहीं की थी। गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज ने खालसा पंथ स्थापित करते समय भी यह नही कहा था कि इसके बाद खालिस्तान कायम किया जाएगा। आज तो हमारे अकाली मित्र दो कौमों की बात करते हैं। दसों के दसों गुरुओं में से किसी ने किसी अन्य कौम की बात नही की थी। जिसे अकाली कौम कहते है, गुरु साहेबान उसे या तो उसे पंथ कहते थे या संगत कहते थे। जब किसी ने गुरु गोविन्द सिंह जी से पूछा कि यह खालसा पंथ क्यों स्थापित किया गया है तो उन्होंने उत्तर दिया :—

"आगिया भई अकाल की तबै चलायो पंथ
सब सिक्खन को हुकम है गुरु मानियो ग्रन्थ"

यहां आकर सारी बात खत्म हो जाती है। उन्होंने कहा कि अकाल अर्थात् परमात्मा का यह आदेश था। उसके अनुसार मैंने यह पथ स्थापित कर दिया है। इसी से हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं कि जो लोग आज दो कौमो की बात करते है वास्तव मे उनका उद्देश्य क्या है।

वैसे तो मेरा यह विश्वास है कि सभी दसों गुरुओ का हिन्दू धर्म मे पूरी निष्ठा थी और वह अपने आप को उसके पाबन्द समझते थे। मैं आगे चल कर बताऊंगा कि वह हिन्दू धर्म के पाबन्द किस तरह रहे। आज तो एक और बात की ओर टोहरा साहिब का ध्यान दिलाना चाहता हूं। यह मैं इस लिए लिख रहा हूं कि क्योंकि मैं यह अनुभव करता हूं कि टोहरा साहिब के विचारो में कुछ परिवर्तन आ रहा है। हाल ही मे उनके जो वक्तव्य समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए हैं, उनसे ऐसा प्रतीत होता है। कि वह हिन्दुओं के निकट आ रहे है। वह यदि हमारे निकट आ रहे है तो कोई कारण नही कि हम उनके निकट न जाएं। इसलिए कुछ ऐसी घटनाएं प्रस्तुत करना चाहता हूं जिन के द्वारा हिन्दुओं और सिखो के सम्बन्ध सुदृढ बनाए जा सके।

मेरे अकाली मित्र पंजाब मे हिंदी को सहन करने को तैयार नही। उनका रवैया कहां तक उचित है मैं इस समय इस विवाद मे पड़ना नही चाहता। लेकिन टोहरा साहब की जानकारी के लिए निवेदन करना चाहता हु कि :—

1- शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी यह कह चुकी है कि गुरु गोवि द सिंह की मातृभाषा हिंदी थी। मैं केवल यह जानना चाहता हूं कि यदि गुरु महाराज की मातृ भाषा हिंदी हो सकती थी तो हमारी क्यों नही।

2- गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपनी आत्म कथा "विचित्र नाटक" हिन्दी मे भी लिखी और उसमे अधिकांश शब्द संस्कृत के ही प्रयोग किए हैं। उनके समय में आज की

पंजाबी कोई नहीं जानता था। यह तो अकालियों की घड़ी हुई पंजाबी है। यह गुरु गोविन्द सिंह की पंजाबी नही है।

3- गुरु महाराज ने अपनी इस आत्मकथा 'विचित्र नाटक' को संस्कृत के इन शब्दों के साथ समाप्त किया था :—

'इति श्री विचित्र नाटक ग्रन्थे समाप्तमस्ते शुभमस्तु।'

4- गुरु जी ने अपने दरबार के कई पंडित संस्कृत पढ़ने के लिए बनारस भेजे थे।

5- उनके दरबार मे 52 कवि थे जिनमें अधिकतर हिंदी के कवि थे। उन कवियों के काव्य संग्रह को 'विद्यासागर' का नाम दिया गया था।

6- एक कवि थे उनका नाम था 'सेनापति'। गुरु महाराज ने उसे चाणक्य नीति का भाषानुवाद करने को कहा था।

7- एक कवि थे उनका नाम था हंसराज। गुरु महाराज ने उसे महाभारत के कर्ण पर्व का अनुवाद करने को कहा था।

8- एक कवि था "अमृतराय" उसे महाभारत के 'सभा पर्व' का अनुवाद करने को कहा गया था।

9- एक कवि थे "मगल"। उसे भी महाभारत का अनुवाद करने को कहा गया था।

10- अभिप्रायः यह कि महाभारत और अन्य हिंदू धार्मिक ग्रन्थों का अनुवाद कराया गया। इस पर भी हमारे अकाली मित्र कहते हैं कि हम हिन्दू नही है।

श्री गुरचरण सिंह टोहरा कहते हैं कि वह हिंदू नही हैं। साथ यह भी कहते है कि हिन्दुओं और सिखों का अटूट सम्बन्ध है खालसा को हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए स्थापित किया गया था। और सिख इसे गर्व की बात समझें कि उन्हें यह काम सौंपा गया था। इसलिए उन्होंने सिखों से कहा है कि वह अपनी परम्परागत उदारता और भाईचारे से काम लेते हुए हिन्दुओं का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

मैं कह चुका हूं कि जो लोग अपने आपको हिन्दू कहलाने में लज्जा महसूस करते हैं। हम उन्हें हिंदू कहने को विवश करना नहीं चाहते। वह इसलिए भी कि प्रत्येक व्यक्ति हिंदू नहीं बन सकता हिंदू एक विशेष प्रकार की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस विचारधारा की रक्षा के लिए महराणा प्रताप, छत्रपति शिवा जी और गुरू गोविंद सिंह ने अपनी तलवार उठाई थी। इसलिए हिंदू बनना कोई आसान काम नही है। कोई ऐरा-गैरा हिंदू नही बन सकता इसलिए यदि गुरचरण सिंह टोहरा और उनके साथी कहते हैं कि वे हिंदू नही हैं तो मैं तो कम से कम यह मानने को तैयार हू वे हिंदू नही है।

लेकिन मैं कई बार लिख चुका हूं और आज पुन: डके की चोट कहता हूं कि जहां तक गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु गोबिंद सिंह तक दसों गुरु साहेबान का सम्बन्ध है, वे हिंदू थे। कोई शक्ति उन्हें हमसे छीन नहीं सकती। गुरचरण सिंह टोहरा जैसे व्यक्ति के दिमाग में यह बात नही बैठती कि गुरु साहेबान हिंदू थे। लेकिन टोहरा साहब की जानकारी के लिए मैं यह लिख देना चाहता हूं कि एक प्रसिद्ध पत्रकार और इतिहासकार खुशवन्त सिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि दसों के दसों गुरु हिंदू थे। खुशवन्त सिंह ने सिख इतिहास पर अंग्रेजी मे एक पुस्तक लिखी है। उसके शुरू में ही उसने लिखा दिया है। कि सब गुरु साहेबान हिंदू थे। यह एक टकसाली सिख रहा है। और यह मेरे इस विचार की पुष्टि है कि गुरु साहेबान हिंदू थे। मैं कुछ ऐतिहासिक घटनाएं इससे पहले ऐसी प्रस्तुत कर चुका हूं जो यह प्रमाणित करती हैं कि गुरू साहेबान हिंदू थे। गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज ने अपनी पुस्तक 'विचित्र नाटक' मे राम अवतार, कृष्ण अवतार, कलकी अवतार, नर अवतार, ब्रह्म अवतार, रूद्र अवतार, पारसनाथ अवतार और इस प्रकार की जो और बाते लिखी है, वह एक हिदू ही लिख सकता है, कोई अन्य नही। अपनी इस आत्मकथा मे उन्होंने यह भी बताया है कि उन्होंने इस धरती पर जन्म क्यो लिया और अपने इस श्लोक को वह इन शब्दों से शुरू करते है :

"हम इह काज जगत मो आए। धर्म हेतु गुरूदेव पठाए। जहां तहां तुम धर्म बिथारों। दुष्ट देखियन पकरि पछारो। या ही काज धरा हम जनमं समझि लेहु साधु सब मनमं। धरम-चलावन सन्त उबारन दुष्ट सभन को मूल उपारन"

यदि टोहरा साहिब ने गीता पढी है उसमे भगवान कृष्ण का वह उपदेश पढा होगा जो उन्होंने कुरूक्षेत्र के मैदान मे अर्जुन को दिया था, और जिसमे उन्होने बताया था कि जब-२ धर्म पर कोई मुसीबत आती है और धर्मात्माओं पर अत्याचार होते हैं तो उस समय धर्म की रक्षा करने और धर्मात्माओं को बचाने के लिए युग-2 में मैं जन्म

लिया करता हूं। कोई बताए कि जो कुछ भगवान कृष्ण ने कहा था, उसमें और जो कुछ गुरु गोविंद सिंह जी ने कहा था, उसमें क्या अन्तर है। दोनों को पढ़ने के बाद हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि गुरु गोविंद सिंह जी पर भगवान कृष्ण की शिक्षाओं का इतना प्रभाव था कि जो कुछ 5 हजार वर्ष पूर्व भगवान कृष्ण ने अपने बारे में कहा था; वही कुछ गुरु गोविंद सिंह जी ने अपने बारे में कह दिया।

लेकिन यह क्रम यही समाप्त नही हो जाता। चूंकि हमारे अकाली मित्र गुरु साहेबान के लिखे साहित्य को नहीं पढते इस लिए कई बातें उन्हे याद दिलानी पड़ती हैं। उसी सम्बन्ध में गुरु गोविंद सिंह जी के लिखे हुए दो और श्लोक मैं पेश करना चाहता हूं। पहला था :—

"यही देहु आगिया तुरक को मिटाऊं
गऊ घात का पाप जग से हटाऊं"
और दूसरा था :—
"तिलक जंजू राखा प्रभु ताका,
कीनों बड़ी कलूमही साका"

इन दोनो से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु महाराज ने गऊ घात के पाप को मिटाने का संकल्प कर रखा था। आज के अकाली तो कहते है कि सिख और मुसलमान भाई-भाई हैं। लेकिन गुरु गोविंद सिंह जी तो 'तुर्क' को मिटाना चाहते थे और साथ ही तिलक तथा जंजु अर्थात् यज्ञोपवीत की रक्षा करना चाहते थे।

क्या इसके बाद भी कोई कह सकता है कि गुरु साहेबान हिंदू नही थे। गुरू गोविंद सिंह के सारे साहित्य में कहीं भी यह नही लिखा गया कि वह हिंदू नही हैं या हिंदू धर्म से उनका कोई संबंध नही था।

आज मैं अपने अकाली मित्रों की एक और भ्रान्ति भी दूर करना चाहता हूं। वह प्रायः पंजाब, पंजाबी और पंजाबियत का बहुत रोना रोया करते हैं। क्या उन्हें यह पता है कि श्री गुरु गोविंद सिंह ने अपने 'विचित्र नाटक' में कहीं भी पजाब का उल्लेख नहीं किया। उनका जन्म पटना में हुआ था। और उनके पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी उन्हें आनन्दपुर साहिब ले आए थे। इसके बारे मे गुरु गोविंद सिंह जी अपने "विचित्र नाटक" में लिखते हैं।

"तही प्रकाश हमारा भयो। पटना सहर विखे भवलयो। मद्र देस हम को ले आए। भांति-भांति दायन दुलराय"

गुरू महाराज ने पंजाब का उल्लेख नही किया, किसी मद्र देश का उल्लेख किया है जहां उनके पिता उन्हे ले आए थे। हम जानते है कि वह आनन्दपुर साहिब था जिसका अभिप्राय है कि श्री गुरू गोविंद सिंह के समय मे यह इलाका पजाब नही था मद्र देश था।

पटना से चल कर गुरू गोविंद सिंह कहा आए थे। जहां तक हम जानते है उनका बचपन बहुत कुछ आनन्दपुर साहिब मे ही गुजरा था। यही कश्मीर के हिंदू पंडित गुरू तेगबहादुर जी से आकर मिले थे। और यही गुरू गोविंद सिंह जी ने अपने पिता जी से कहा था कि इस समय किसी बहुत बडे बलिदान की आवश्यकता है यह सब कुछ आनन्दपुर साहिब मे हुआ था। प्रश्न पैदा होगा कि आनन्दपुर साहिब उस समय कहा था। गुरू महाराज ने उस क्षेत्र का नाम मद्र देश लिखा है, पजाब नही लिखा। तो क्या इस का अभिप्राय यह हुआ कि उनके समय मे पजाब नाम का कोई क्षेत्र नही था? नही था, तो कब इस क्षेत्र को पजाब नाम दिया गया। यदि यह गुरू गोबिन्द सिंह के बाद दिया गया तो पजाब पजाबी और पजाबियत का सारा दावा समाप्त हो जाता है और आज पजाब पजाबी और पजाबियत पर जितना शोर मचाया जा रहा है, वह सब अर्थहीन है। मैने गुरु गोबिन्द सिंह के बारे मे बहुत सा साहित्य पढा है। उनका लिखा हुआ 'बिचित्र नाटक' भी पढा है। मुझे कही भी पंजाब पजाबी या पजाबियत का उल्लेख देखने मे नही मिला। खालसा, पथ, सगत इस प्रकार के शब्द तो बहुत मिलते है। लेकिन पजाबी का कही उल्लेख नही है। और जहा तक मै जानता हू गुरू साहेबान ने पंजाबी पर इतना जोर नही दिया था जितना गुरूमुखी पर। गुरूमुखी लिपी गुरू अगददेव ने बनाई थी, इसलिए यदि पजाबी की बजाए गुरूमुखी पर जोर दिया जाए तो उसका अर्थ कुछ और निकलेगा। लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि हमारे अकाली दोस्त किसी तर्क के आधार पर नही चलते। भावनाओ के आधार पर सब काम करते है। इसका यह परिणाम है कि वह तथ्यो को अनदेखा कर देते है। जब किसी एक बात पर एक गलत स्टैंड ले ले और फिर उस मे से निकलने का कोई रास्ता दिखाई न दे तो फिर चिल्लाते है। कुछ भी हो मेरा तो सीधा प्रश्न है, वह यह कि पटना से चलने के बाद गुरू गोविंद सिंह जी कहा गए थे। जिस आनन्दपुर साहिब मे वह गए थे, वह कौन से पजाब मे था। और जिस मद्र देश का उल्लेख गुरु महाराज ने अपने "विचित्र नाटक" मे किया है, वह कहा था?

अकालियो की एक कठिनाई भी है। वह गुरू साहेबान के लिखे साहित्य को पढते नही। गुरुद्वारो के ग्रन्थी उन्हे जो सुना देते है उसके आधार पर वह अपने मोर्चे

लगा देते हैं। जो कुछ गुरू साहेबान ने कहा था यदि वह पूरी गम्भीरता से उसका अध्ययन करें तो उनकी आंखें खुल जाएंगी और वह स्वयं हैरान होंगे कि वे किधर जा रहे हैं। मैंने पूर्व भी लिखा था कि गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी आत्मकथा "विचित्र नाटक" संस्कृत के कुछ शब्दों के साथ समाप्त की थी। यह लिखने के बाद मैंने उस पुस्तक को पुनः देखा और मुझे यह देख कर और भी अधिक खुशी हुई और हैरानी भी कि गुरु महाराज ने अपनी उस पुस्तक का प्रत्येक अध्याय सस्कृत के साथ समाप्त किया है। अर्थात् उन्हें संस्कृत में उतनी ही श्रद्धा थी जितनी कि किसी हिन्दू को हो सकती है। और यह केवल इसलिए कि उन्होंने हिन्दू और सिख में कोई अन्तर नही समझा था। हिन्दू धर्म के लिए उनके दिल मे वही श्रद्धा थी जो किसी हिन्दू के दिल मे हो सकती है। वास्तविकता तो यह है कि चूंकि उन्हें हिन्दू धर्म में आस्था थी इसलिए उसकी रक्षा के लिए ही उन्होंने खालसा पंथ सजाया था। आज तो रक्षक भी भक्षक बन गए हैं। गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज का कदापि यह उद्देश्य नही था। वह तो यही कहा करते थे "जगे धर्म हिन्दू सकल द्वंद्व भागे।

यह तो मैंने दसवें गुरू श्री गुरू गोविन्द सिंह जी महाराज के बारे मे लिखा है। हिन्दू धर्म और हिन्दू परम्पराओं में सिख गुरुओ को कितनी श्रद्धा थी इसका एक और उदाहरण भी पेश करना चाहता हूं। तीसरे गुरू अमरदास जी के बारे मे कहा जाता है कि जब उनका देहांत होने लगा तो उन्होंने अपने सारे परिवार को अपने पास बुला लिया। और उन्हें यह उपदेश दिया कि, "मेरे पीछे कोई भी रोएगा तो वह हमे अच्छा नहीं लगेगा, और सारे परिवार से गुरू रामदास जी ने चरणों मे शीश निवाकर कहा कि मेरे पीछे कीर्तन करना और गोपाल पंडित को बुलाकर पुराण की कथा करवाना और पिण्ड पत्तल किरिया दीवा आदि सहित फूल गगा जी मे बहा देना।" कोई बताए यह सब कुछ कहने वाले कौन थे। कई हिन्दू भाई यही सब कुछ करते हैं जो गुरू अमरदास जी ने उस समय कहा था। और उनके बारे में यह भी कहा जाता है कि वह 22 बार गंगा स्नान के लिए हरिद्वार गए थे। मुझे कोई बताए कि इससे बड़ा क्या कोई और हिन्दू हो सकता है। मैंने जो श्री गुरू अमरदास जी के बारे मे लिखा है, यह श्री गुरुग्रन्थ साहिब के पृष्ठ 923 राग रामकली मे आपको मिल जाएगा।

जिन महापुरूषों की वाणी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब मे शामिल की गई है, उनमें एक नामदेव भी थे। वह हरि का नाम लेने के बारे में जो कुछ लिखते हैं वह निम्न-लिखित है :—

"हरि हरि करत मिटे सम भरमा। हरि को नाम लै उत्तम धरमा
हरि हरि करत जात कुल हरि। सो हरि अन्धले की लाकरि

हरि-ए नमस्ते हरि-ए नमन। हरि हरि करत नहीं दुख जमः।"

इसमें आर्य समाजियों की नमस्ते भी की गई। यदि मैं श्री गुरू ग्रन्थ साहिब से उन सब की वाणी नकल करने लगूं जिन की वाणी उस में शामिल की गई है तो पाठक हैरान हो जाएंगे कि हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू परम्पराओं के बारे में श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में क्या लिखा गया है। चूंकि अकाली श्री गुरू ग्रन्थ साहिब ही नहीं पढ़ते उन्हें पता ही नहीं उसमें क्या कुछ लिखा गया है। यदि पढ़ें और जो कुछ उस में लिखा गया है उसे समझने का प्रयत्न करें तो जो बातें अब करते हैं, वह कभी न करें, कम से कम यह नही कहेंगे कि हम हिन्दू नही हैं। मैं इसी लिए कहा करता हूं कि हमे अकालियों मे और सिखों मे अन्तर समझना चाहिए। कोई भी सिख जो गुरु साहेबान के पद चिन्हो पर चलता है, कभी हिन्दुओं के विरुद्ध नहीं हो सकता। अकाली चूकि ग्रन्थ साहिब गम्भीरता से नही पढ़ते इसलिए वह हिन्दुओं के विरुद्ध बोलते रहते हैं।

मैंने प्रारम्भ मे गोविन्द सिंह जी और गुरू अमरदास जी की वाणी को काफी उद्धृत किया है। गुरू तेग बहादुर के बारे मे भी लिखा है और श्री गुरू ग्रन्थ साहिब को भी उद्धृत किया है। इस विषय पर लिखना चाहूं तो बहुत कुछ लिख सकता हूं। मुझे इस बात का खेद है कि हमारे अकाली मित्र गुरु साहेबान के लिखे हुए साहित्य को कभी नही पढ़ते, गुरु साहेबान का साहित्य तो दूर रहा, ऐसा प्रतीत होता है कि वह ग्रन्थ साहब भी नहीं पढ़ते। कोई व्यक्ति जो ग्रन्थ साहब और गुरु साहेबान के साहित्य को पढ़ जाए, कभी यह नही कह सकता कि हिन्दू और सिख दो कौमें हैं। लेकिन हमारे अकाली दोस्त लगातार यही रट लगाते चले जा रहे हैं कि हिन्दू और सिख दो कौमें हैं। इसीलिए सिखो के लिए विशेष पृथक् क्षेत्र की आवश्यकता है। गुरु नानकदेव जी महाराज तो अपने धर्म का प्रचार करते हुए ईरान, इराक और मक्का मदीना तक जा पहुंचे थे। श्री गुरु तेग बहादुर बाबा बकाला से चले और असम तक जा पहुचे। गुरु गोविन्द सिंह का जन्म बिहार मे हुआ था। उन का पालन-पोषण पंजाब में हुआ था। उन का देहान्त महाराष्ट्र मे जा कर हुआ। गुरु साहेबान ने कभी यह नहीं कहा था कि यह इलाका हमारा है यह दूसरे का है। उनके लिए जो सारा संसार ही उनका था। इसलिए उन्होंने कभी पंजाबी सूबा की मांग नही की थी न उनके दिमाग में कभी आनन्दपुर साहिब के प्रस्ताव जैसी बातें आई थी। उनके सोचने का ढंग क्या था इस का अनुमान हम इससे लगा सकते हैं कि गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने बारे में यह लिखा है कि उन्होने कभी हेमकुंड में तपस्या की थी। यह हेमकुंड बद्रीनाथ जाते हुए रास्ते में आता है। वहां एक बहुत बड़ा गुरुद्वारा भी बन गया है। आज तो हमारे सिख भाई जब चाहें वहां चले जाते हैं उन पर कोई प्रतिबन्ध नही है। कल को यदि

खालिस्तान बन जाए तो उन्हें पटना साहेब जाने के लिए भी पासपोर्ट की जरूरत पड़ेगी दिल्ली सीस गज गुरुद्वारा, रकाबगज, और दिल्ली के अन्य गुरुद्वारों को देखने के लिए भी उसी तरह पासपोर्ट लेना पड़ेगा जिस तरह आज ननकाना साहेब जाने के लिए लेना पड़ता है। अभिप्राय यह कि हमारे अकाली भाई स्वयं ही तो ऐसी परिस्थिया पैदा कर रहे हैं कि वह न केवल हिन्दुओं से कट जाएं बल्कि अपने उन ऐतिहासिक गुरुद्वारों से भी कट जाएं जो सिख पथ की सबसे बडी पूजी है। और जिन गुरुद्वारो पर केवल सिख ही नही हिन्दू भी गर्व करते है।

इस पुस्तिका को समाप्त करने से पहले मैं एक और बहुत बड़े सिख का उदाहरण अकालियो के सामने रखना चाहता हूँ। वह थे महाराजा रणजीत सिंह। वह बडे कट्टर सिख थे। परन्तु साम्प्रदायिकता और धार्मिक सकीर्णता उनके निकट तक नही फटकती थी। उनके शासनकाल मे हिंदू, मुसलमान सिख सबके साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता था और उनके दिल मे हिंदू धर्म के लिए वही श्रद्धा थी जो सिख धर्म के लिए थी। दो तीन उदाहरण मेरे इस विचार की पुष्टि करते है। उनके समय मे अफगानिस्तान मे गृह युद्ध चल रहा था। वहा के बादशाह शाह शुजा को वहां से भागना पड़ गया। उसने महाराजा रणजीत सिंह से सहायता मागी। महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी दो शर्ते पेश की। एक यह कि महमूद गजनवी सोमनाथ मन्दिर के जो दरवाजे वहा से निकाल कर ले गया था, वह वापिस किए जाए। दूसरी यह कि अफगान यह वचन दें कि भविष्य मे वे गोवध नही करेंगे। इससे पहले महाराजा रणजीत सिंह ने कोहेनूर का हीरा भी उनसे मागा था। शाह शुजा महाराजा की दोनो शर्ते मान गया और कोहेनूर का हीरा भी उन्हें दे दिया गया। एक ओर तो हमारे सामने महाराजा रणजीत सिंह का उदाहरण है जो इतने गोभक्त थे कि उन्होंने अफगानिस्तान के बादशाह से भी यह वचन ले लिया था कि वह गोहत्या नही करेगा। दूसरी ओर आजकल कई वह लोग है जो स्वय को अकालियो की छत्र-छाया मे काम करते बताते है, वह गौओ के सिर काट कर मन्दिरो मे फेंक देते हैं। महाराजा रणजीत सिंह हिंदू और सिख दोनो को किस तरह एक ही स्तर पर रखने का प्रयत्न करते थे उसका अनुमान हम इससे लगा सकते हैं कि एक और विधिवत रूप से ग्रन्थ साहिब पाठ किया करते थे। अमृतसर के हर मन्दिर के लिए उन्होने बहुत कुछ दिया था और उस पर आज जितना सोने का छत्र चढा है, वह भी महाराजा रणजीत सिंह ने ही दिया था। दूसरी ओर उन्होंने अपने देहान्त से पहले यह वसीयत कर दी थी कि कोहेनूर का हीरा जगन्नाथपुरी के मन्दिर को दिया जाए। उन्होंने बनारस के विश्वनाथ मन्दिर के लिए भी बहुत सोना भेजा था। कागडा और ज्वालामुखी के मन्दिरो के लिए बहुत दान दिया था।

कोई बताए कि क्या महाराजा रणजीत सिंह सिख नही थे और सिख होते हुए भी यदि उनके दिल मे हिंदू धर्म देवी-देवताओं और हिंदू मन्दिरों के लिए इतनी श्रद्धा थी

तो केवल इसलिए कि वह हिंदुओं को सिखों से अलग नहीं समझते थे। हिंदू धर्म और सिख धर्म में कोई अन्तर न समझते थे। जो कुछ भी हमारे गुरू कह गए हैं और जो कुछ महाराजा रणजीत सिंह ने कहा था और किया था, उसे सुनने और देखने के बाद यदि अकालियों की कारगुजारी पर किसी को खेद हो तो इस के लिए अकाली स्वय ही जिम्मेदार हैं।

लेकिन कहते हैं कि सुबह का भूला यदि शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नही कहते। हाल ही मे सरदार गुरचरण सिंह टोहरा और संत हरचंद सिंह लौंगोवाल ने कुछ ऐसे वक्तव्य दिए हैं, जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें अपनी त्रुटि का आभास होने लगा है। कहावत मशहूर है, "जब दिया रंज बुतों ने तो खुदा याद आया।" अब जबकि इन्दिरा सरकार ने उन की जीना दूभर कर रखा है और उस उलझन मे से निकलने का उन्हे कोई रास्ता दिखाई न दे रहा, जिस मे कि वे फंस गए हैं, तो वे कहने लगे है कि हिन्दू और सिख एक हैं। इसलिए सिखो को हिन्दुओ का विश्वास प्राप्त करना चाहिए। मैं इन दोनों महानुभावो के इन वक्तव्यो का स्वागत करता हूं। यदि वह अब भी हिन्दुओं को साथ लेकर पंजाब की समस्या हल करने का प्रयत्न करें तो बहुत कुछ हो सकता है। मैंने टोहरा साहब से यह अनुरोध किया है कि अब वह वापिस आ जाएं। इससे मेरा अभिप्राय केवल यह है कि वह गुरु के चरणों मे वापिस आ जाए। वह भटक गये हैं गुरु साहेबान के रास्ते पर चलने में ही उन का भी कल्याण है और हमारा भी। इसलिए यदि सरदार गुरचरण सिंह टोहरा पजाब को बचाना चाहते है तो उन्हें अपना पहला रास्ता छोड़कर उसी पर चलना चाहिए जो गुरु साहेबान ने हमे बताया था। अर्थात् प्यार सद्भावना, सहनशीलता और भाई-चारे का रास्ता।

— 0 —

# "विश्व-पर्यावरण दिवस"

## ५ जून, १९८३
## (ले०—डा० विजय शंकर जी)

"पर्यावरण से हमारा तात्पर्य अपने या किसी भी जीव या जीव समूह के बाहर विद्यमान परिवेश समस्त वस्तुओं, पदार्थों एवं कारकों के समुच्चय या सम्मिश्रण से हैं, जैसे-जल, वायु, पृथ्वी, धुआं, ध्वनि, मोटर, रेल, वायुयान, जन्तु-वनस्पति, मनुष्य आदि।

मनुष्य के द्वारा की गई अनेक क्रियाओं के फलस्वरूप आज पर्यावरण में ऐसे परिवर्तन आ रहें हैं जो समस्त प्रकार के जीवन के लिये हानिकारक हैं। इस प्रकार हमारा पर्यावरण दूषित हो रहा है। इस समस्या की ओर आज पूरे विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

वर्तमान जगत की यह समस्या जो भयावह रूप से मानव सभ्यता को निगल जाने के लिये अपने पंजे बढ़ा रही है प्रदूषण की समस्या है। प्रत्येक व्यक्ति की पर्यावरण के प्रति सहनशीलता की निश्चित सीमायें हैं और जब कोई कारक इन सीमाओं से अधिक मात्रा में उपस्थित होता है उसे प्रदूषण कहते हैं। इससे निबटने के लिये, वातावरण में इस विष-वमन की प्रतिक्रिया को रोकने के लिये सभी देशों की सरकारें प्रयत्नशील है। इस विष को पीने के लिये भगवान शिव की तरह सबसे अधिक सफल माध्यम वृक्ष पाये गये हैं। इनकी पत्तियां वायु में मिले प्रदूषक पदार्थों के सूक्ष्म कणों को रोक और सोख लेती है। पत्थर के कोयले से उत्पन्न प्रदूषक रोकने के लिये "जंगल जलेबी" नामक वृक्ष का सघन रोपण बहुत लाभकारी पाया है। यह धुंए की सांद्रता में लगभग "27 प्रतिशत" की कमी और सल्फर डाय-आक्साइड की सांद्रता में "80 प्रतिशत" की कमी करने में समर्थ पाया गया। शक्ति-चालित वाहन जैसे-कारें, ट्रक एवं बसें भी प्रदूषण के स्रोत हैं। यदि सड़कों और मकानों के बीच 10 मीटर चौड़ी तथा 6 मीटर ऊंची हरित पट्टिका का विकास किया जाये तो मार्गों से आने वाले कार्बन मोनो आक्साइड की "मात्रा मे 44 प्रतिशत" कमी हो जाती है।

वायु के समान जल भी प्रदूषण से मुक्त नहीं है। कारखानों से निकलने वाले नाना प्रकार के प्रदूषक पदार्थ नदियों में प्रवाहित किये जाते हैं। इसीलिये कानपुर के निकट गंगा और कलकत्ता के निकट हुगली नदी प्रदूषण का शिकार है। इस समय भारत के 13 नगर जल प्रदूषण से ग्रस्त हैं। कारखानों से निकालने वाले अनेक ट्रेस एलीमेंट नदी के जल में प्रवाहित हो जाते हैं जिनमें से कुछ पौधों और जन्तुओं में मेटाबोलिक एरर पैदा कर देते हैं जिससे कई प्रकार के रोग हो जाते हैं जैसे-कैंसर, हृदय रोग, स्नायु रोग एवं पेट के रोग।

प्रदूषण के लिये प्रायः जन-संख्या को उत्तरदायी माना जाता है। बढ़ती हुई जन-संख्या की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अधिक औद्योगीकरण किया जाता है जिससे प्रदूषण में वृद्धि होती है। किन्तु आज हम देखते हैं कि अनेक विकसित देशों में जनसंख्या कम होने में जनसख्या कम होने पर भी प्रदूषण अधिक जनसंख्या वाले देशों की तुलना में अधिक है क्योंकि वहां प्रति व्यक्ति आवश्यकता है। अतः वास्तविक दोष तृष्णा का है। इसीलिये हमारे वैदिक ऋषियों ने "इदन्नमम" को इतना महत्व दिया है।

## वातावरण संरक्षण

प्रदूषण को कम करने के अतिरिक्त पौधो का वातावरण संरक्षण में भी अत्याधिक महत्व है। वृक्षों का बेहिसाब काटा जाना, जंगल के जंगल, साफ कर देना प्रकृति में असन्तुलन पैदा कर देता है। इसके दूरगामी परिणाम होते हैं-भूमि का "अपरदन" प्रारम्भ हो जाता है, भूमि कृषि के "अयोग्य" हो जाती है। ताप-नियन्त्रण एवं "जलचक्र" नियन्त्रण बिगड़ जाता है, जन्तु जीवन के प्राकृतिक निवास एवं वन संपदा नष्ट हो जाते हैं। प्रत्यक्ष है कि वातावरण सरक्षण और वृक्षों का गहरा सम्बन्ध है। "रक्षया प्रकृति पातु लोकाः।" ब्रह्मोपनिषद का यह वाक्य मनुष्य को सदैव याद रखना पड़ेगा अन्यथा विनाश का वह मार्ग जिस पर वह चल पड़ा है उसे कहीं का नहीं छोड़ेगा।

## वेदों में पर्यावरण संरक्षण :—

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्धत प्रवतः समं बहु ।
नाना वीर्या ओषधीर्या विभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्तां नः ॥

अथर्व 12/2

## वनस्पतियों से युक्त पृथ्वी ही कल्याण करने वाली है :

· पृथ्वी के ऊंचे भाग, अर्थात् पर्वत समतल भाग और निम्न भाग नाना गुणों वाली औषधियों से परिपूर्ण हों। एसी नाना गुणों से युक्त वनस्पतियों से मण्डित पृथ्वी ही मनुष्य मात्र का कल्याण करने वाली होती है। जब पृथ्वी के उक्त तीनों भाग वनस्पतियों से नंगे हो जाते हैं तो पृथ्वी मनुष्य का कल्याण करने मे असमर्थ हो जाती हे।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठाहिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रति भूमिरग्निमिंद्रऋषभाद्रविणे नो दधातु॥

अथर्व० 12/6

## भूमि सम्पूर्ण सम्पदाओं की जननी है।

यह पृथ्वी समस्त विश्व का भरण पोषण करती है, यह सभी प्रकार के ऐश्वर्यों को धारण करती है, इस पृथ्वी की छाती मे सभी स्वर्ण आदि धातुये विद्यमान है, इसी मे समस्त प्रकार की अग्नियां भी रहती है। यह धन एवं सभी को बल प्रदान करती है। अर्थात् ऐसी भूमि की हमे रक्षा करनी चाहिये।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यंते पृथिवीस्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णा रोहिणी विश्वरूपा ध्रुवा भूमि पृथिवीमिंद्रगुप्ताम्
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठा पृथिवीमहम्॥ अथर्व० 12/11

## पृथ्वी की रक्षा कर, वह तुम्हें दीर्घजीवी बनाएगी।

हे मानव! भूरे रंग वाली, काले रंग वाली और लाल रंग वाली पृथ्वी क्रमश. भरण पोषण, कृषि योग्य और अत्यन्त उपजाऊ होती है एवं रमणीय पर्वतमालाओं एवं नाना प्रकार के वनो से परिपूर्ण रहती है। ऐसी भूमि मनुष्य को पूर्ण आयु प्रदान करती है एवं पूर्ण स्वस्थ रखती है।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि॥

अथर्व० 12/27

## नाना प्रकार के वृक्ष और वनस्पतियों से मण्डित पृथ्वी

जिस भूमि पर सदा बहुत बड़े और जंगल तथा नाना प्रकार की वनस्पतियां स्थिर

रूप में रहते हैं, जिसके पेड़ों को कभी भी नहीं काटा जाता है, वह पृथ्वी सभी की पालना एवं रक्षा करती है, हम उसको नमस्कार करते हैं।

यते भूमे विखनामि क्षिप्रंतदपि रोह तु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ।।

अथर्व० 12/35

## बिना प्रयोजन के भूमि को न खोदें।

हे भूमि हम जिस तेरे भाग को खोदें, वह शीघ्र ही हरा-भरा हो जाये अर्थात् पौधों को इस तरह न काटें कि वह फिर से न उग सके। लोहा, कोयला आदि पदार्थों के निमित्त हमें भूमि को खोदना पड़ता है परन्तु उसे सावधानी से खोदें। पृथ्वी अन्वेषण करने योग्य है परन्तु भूमि की रोहण शक्ति को हम नष्ट न करें। उसे व्यर्थ में न खोदें (अन्यथा इससे भूमि अपरदन होगा)।

शिलाभूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरे नमः ।।

अथर्व० 12/26

## पृथ्वी के विभिन्न रूप

वह पृथ्वी शिला, पत्थर, धूल, मिट्टी आदि रूपों वाली है। इस भूमि के वक्ष स्थल में सोना, चादी, लोहा, तांबा हीरे, जवाहरात एवं खनिज लवण आदि विद्यमान है। ये खनिज लवण पौधों की वृद्धि के लिये आवश्यक होते हैं। यह भूमि सबको धारण करने वाली है। हमें इसका सत्कार करना चाहिये।

## पुराणों में पर्यावरण

1. अग्नि पुराणः यदि कोई व्यक्ति अपने वंश, धन और सुख में वृद्धि की इच्छा रखता है तो वह फल फूल वाले किसी वृक्ष को न काटें। जो व्यक्ति दस कुएं खुदवाता है, उसे एक तालाब खुदवाने का पुण्य मिलता है। जो दस तालाब खुदवाता है उसे एक झील खुदवाने का पुण्य मिलता है; १० झीलें बनाने वाला व्यक्ति एक देश उत्पन्न करने का पुण्य प्राप्त करता है। किन्तु १० देशभक्त उत्पन्न करने का पुण्य एक वृक्ष लगाने के पुण्य की अपेक्षा छोटा है।

2. मतस्य पुराणः एक वृक्ष का आरोपण 10 पुत्रों के बराबर है।

३. वराह पुराण: 'पंचाम्रवापी नरकं न याति' अर्थात् ग्राम के पांच पौधे लगाने वाला व्यक्ति कभी नरक नही जाता है।

४ विष्णु धर्म सूत्र-एक मनुष्य द्वारा पालित पोषित वृक्ष का महत्व एक पुत्र के समान है। देवगण इसके पुष्पों से, यात्री इसकी छाया में बैठकर, मनुष्य इसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

५. पद्म पुराण: जो मनुष्य सड़क के किनारे छायादार वृक्ष लगाता है वो स्वर्ग में उतने ही समय तक सुख भोगता है जितने समय तक वह वृक्ष फलता-फूलता रहता है।

## क्या आप यह जानते हैं ?

I. भारत का कुल थल क्षेत्र ३२५ मिलीयन हैक्टेयर है। इसका प्राय: आधा क्षेत्र अर्थात् १५० मिलीयन हेक्टेयर, जल एवं वायु अपरदन लवणता, क्षारता जल प्लावन आदि के कारण अपकर्ष की विभिन्न स्थितियो मे है।

अत: कोई आश्चर्य नही कि देश की आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे है।

II. १३० मिलीयन टन खाद्यान पैदा करने मे भूमि से लगभग १८ मिलीयन टन खनिज लवण (पोषक तत्व) लिये जाते हैं।

उर्वरक और जैव स्रोतो द्वारा भूमि को १०.३ मिलीयन टन खनिज लवण (पोषक तत्व) दिये जाते हैं।

इस प्रकार भूमि बैंक को ६-७ मिलियन टन खनिज लवण का घाटा रहता है। क्या इस प्रकार ओवर ड्राफ्ट से कोई भी बैंक दिवालिया नही हो जाएगा ? साथ ही हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि 'अपरदन द्वारा भूमि प्रतिवर्ष ८.४ मिलियन टन पोषक तत्व खो रही है।

III. भारत की ४० मिलीयन हेक्टेयर भूमि बाढ़ से पीड़ित है। गंगा क्षेत्र में प्रति वर्ष ८ मिलियन हेक्टेयर भूमि मे बाढ आती है जिससे २५० करोड़ रुपये की वार्षिक हानि होती है।

क. १९८२ से पूर्व बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र २५ मिलियन हेक्टेयर था जो आज बढ़कर ४० मिलीयन हेक्टेयर हो गया।

ख. १९५२ से देश में जिन बांधों का निर्माण हुआ है उनके लिए ४ लाख हेक्टेयर भूमि से वनों को समाप्त करना पड़ा ।

क्या 'क' और 'ख' मे कोई संबंध है ?

बाढ ग्रस्त क्षेत्र की वृद्धि के निम्नलिखित मुख्य कारण है ।

१– जंगलो का बेहिसाब कटान २- भूमि पर उगी वनस्पतियों का विनाश

२– भूमि संरक्षण की कमी ।

## समस्या का समाधान–

१– वृक्षारोपण ।

२– भूमि की जल शोषण क्षमता में वृद्धि करना ।

३– भूमि पर वनस्पतियों का घना आवरण बनाये रखना ।

४– सीमित चारण (चरायी)

एक अनुमान के अनुसार एक औसत आकार के वृक्ष (भार पचास टन) से ५० वर्ष में हमको निम्नलिखित लाभ प्राप्त होता है :—

| आक्सीजन का उत्पादन; १००० किलो | राशि रु० में— |
|---|---|
| १. प्रतिवर्ष के हिसाब से ५० वर्षों मे | २,५०,०००/- |
| २. वायु प्रदूषण पर नियंत्रण | ५,००,०००/- |
| ३. भू-क्षरण की रोकथाम, भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाना | २,५०,०००/- |
| ४ जल का पुनर्चक्रीकरण व पर आद्रता नियंत्रण | ३,००,०००/- |
| ५. पशु, पक्षियों का आवास | २,५०,०००/- |
| ६. प्रोटीन एवं वसा निर्माण | २०,०००/- |
| | १५,७०,०००/- |

# जर्मन ब्राह्मणों के बीच

## ले० माननीय बलभद्र कुमार हूजा

कुलपति

हैम्बर्ग के डाक्टर जोगेन्द्र मल्होत्रा के सौजन्य से लूनीवर्ग की ईस्ट एकेडमी में चल रहे सेमिनार में बरमिंघम के तेरहवें का मनवैल्थ विश्वविद्यालय सम्मेलन के निष्कर्षों एवं तीसरी दुनिया की शिक्षा समस्याओं पर मुझे अध्यापकों की सगोष्ठी में चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ।

मैंने उन्हें बतलाया कि इंग्लैंड, कैनेडा, आस्ट्रेलिया आदि में आज कार्यरत सज्जनों के ज्ञान और कौशल को अप-टू-डेट करने की समस्या है। विज्ञान और तकनीकी विद्या जिस गति से वृद्धि कर रहे हैं, कार्यरत लोगो को अपनी नौकरियां सुरक्षित रखने के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह अपने कौशल को निरन्तर बढाते रहें। वरना वह पिछड़ जाते हैं। इसलिये इन देशों में एक ओर तो ज्ञान विस्तार हेतु नवीन श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। दूसरी ओर छोटे-छोटे कोर्स चलाये जा रहे हैं, ताकि जिज्ञासु लोग यथासम्भव अपनी ज्ञानवृद्धि करते रहें। इंग्लैंड मे तो अब पुनः दो वर्ष के डिग्री कोर्स जारी करने की बात चल रही है, क्योंकि डिग्री की उपादेयता अब केवल इस बात में है कि ज्ञान भण्डार से ज्ञान अथवा जानकारी कैसे उपलब्ध की जाये, न कि ज्ञान कण्ठस्थ कराने में।

कम्प्यूटर क्रान्ति ने शिक्षा और ज्ञान के मानदण्डों को ही बदल दिया है।

इसके विपरीत हमारे देश में अभी तक निरक्षरता और अज्ञान की समस्या गम्भीर रूप में उपस्थित है। साक्षरता लाने-लाने में तो हमें वर्षों लग जायेंगे। किन्तु अब श्रव्य-दृश्य साधनों में असाधारण क्रान्ति होने से तथा सैटेलाइट के आ जाने से जनसाधारण में ज्ञान का विस्तार करने हेतु सा-क्षरता पर निर्भर रहना अनावश्यक और पौराणिक सा हो गया है। हा हमें इन द्रुत और कीमती साधनों का उपयोग करने हेतु उच्चकोटि की शिक्षा सामग्री तैयार करनी होगी और इस दिशा में भारतीय विश्व-विद्यालय एक महान भूमिका निभा सकते हैं।

मैंने उन्हें यह भी बतलाया कि आक्सब्रिज माडल से असंतुष्ट होकर स्वामी दयानन्द से अनुप्रेरित होते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने १६०० में गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय की स्थापना की थी। वैदिक वांगमय की शिक्षा के साथ-साथ उनका अभिप्राय आधुनिक विज्ञान से भी स्नातकों को पूर्णत: अवगत कराने का था—और इसमे उन्हें यथेष्ठ सफलता भी प्राप्त हुई।

हां, साधारण विश्वविद्यालय अभी तक अनुसन्धान और शिक्षा के क्षेत्र मे ही दत्तचित रहे हैं। विस्तार के क्षेत्र की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई। इस ओर सर्वप्रथम भारत के कृषि विश्वविद्यालयों का ध्यान गया और हाल मे भारत में जो हरित-क्रांति हुई है उसमें प्रवृत्ति एक प्रमुख अंग बनकर सामने आई। कृषि स्नातकों ने भारत की कृषि विस्तार सेवाओं के असंख्य कर्मचारियों को नेतृत्व देकर कृषि अनुसधान की उपलब्धियों को खेतीहर किसानों तक पहुंचाया और आज भारत का सजग कृषक समुदाय अपनी उन्नत खेती पर गर्व कर सकता है।

इसी प्रकार अब साधारण विश्वविद्यालय भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रबल नेतृत्व मे अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार जनसाधारण में ज्ञान प्रसार करने हेतु कृतसंकल्प हो रहे हैं। इसी से "तमसो मा ज्योतिर्गमय" की सूक्ति यथार्थ हो पायेगी।

मैंने उन्हें गंगा योजना और हिमालय योजना के बारे में भी बतलाया।

गोष्ठी में मुझसे पैने प्रश्न पूछे गये। एक अध्यापक ने पूछा कि आपका देश इतना गरीब है, फिर आप अणु बम पर करोड़ों रूपया क्यों खर्च करते हैं। मैंने कहा कि सर्वप्रथम हम स्वावलंबी बनना चाहते हैं। क्यों न हमारे वैज्ञानिक इस दौड़ में भी विश्व के वैज्ञानिकों के साथ कंधा मिलाकर चलें ? दूसरे, हमारे आणविक प्रयोग शान्ति के लिये हैं न कि युद्ध के लिये। तीसरे, इनसे हमें उर्जा उपलब्ध होगी। इसके साथ-साथ ही हम अपने स्पेस अनुसंधान के कार्यक्रम को भी बढावा दे रहे हैं। इससे हम सस्ते में करोड़ों अशिक्षित लोगों तक ज्ञान ज्योति फैला सकेंगे। वातावरण के संबंध में हमें जो ज्ञान उपलब्ध होगा वह कृषको तक पहुंचाकर उनका मार्ग दर्शन कर सकेंगे। हमारी पंचवर्षीय योजनायें भी अधिक वास्तविक बनेंगी, इत्यादि।

एक प्रश्न के उत्तर मैंने उन्हें बतलाया कि गुरुकुल का लक्ष्य तो सर्वांगीण शिक्षा देना है न कि केवल तीन विषय पढ़ाकर स्नातक की डिग्री प्रदान करना। हमारे ब्रह्मचारी १७-१८ वर्ष गुरु के गर्भस्थ रहकर वेद-वेदांग के अतिरिक्त विभि न शास्त्रों अथवा उपवेदों का ज्ञान प्राप्त करें, ऐसा हमारा लक्ष्य है। स्वाती दयानन्द द्वारा

प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थ वेद सिखलाने का भी प्रावधान है। एक अध्यापक को सर्वांगीण शिक्षा का यह लक्ष्य बहुत पसन्द आया और कहने लगा कि विश्वविद्यालय को डिग्री प्राप्त युवक निर्माण करने की बजाय सर्वकला सम्पूर्ण युवक तैयार करने चाहिएं, तभी गुरु सही अर्थ में गुरु कहलाने योग्य होंगे और गुरुकुल सार्थक होंगे।

भारत के विरुद्ध कितना मिथ्या प्रचार हो रहा है, इससे स्पष्ट हुआ जब एक अध्यापक ने पूछा कि भारत मे अभी भी अकाल से जनसाधारण मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ऐसा चीन में नहीं होता, उसने कहा। मैंने उत्तर दिया कि चीन का तो कोई क्या जाने। चीन में खुला आवागमन नही है किंतु भारत तो एक खुली किताब है। आईये, और स्वयं देखिये। सन् १६५० के मुकाबले मे हमारे यहां अब ३.५ करोड़ टन की बजाय १३ करोड़ टन अन्न पैदा हो रहा है। अत: हर राज्य मे अन्न के भण्डार स्थापित हो चुके हैं और रेल और यातायात के साधन इतने अच्छे हैं कि जब कभी वर्षा के अभाव के कारण कही सूखा पड़ता है तो फौरन वही अनाज पहुंचा दिया जाता है। अपौष्टिक अथवा असतुलित आहार की बात हो सकती है, लेकिन अनाज के अभाव मे किसी की मृत्यु होना अब भूतकाल की कहानी हो गयी है।

"आप पड़ोसियों को डराते बहुत हैं" एक ने पूछा। मैंने कहा डराने की बात भी प्रोपोगैण्डा मात्र ही है। हम तो दक्षिण एशिया में शान्ति और परस्पर सहयोग चाहते हैं। डराते तो वह हैं जो भारत महासागर मे आणविक अड्डे बना रहे हैं और युद्ध का सामग्री तैयार करने पर अरबों रूपया खर्च कर रहे है। जैसा कि बरमिंघम मे राष्ट्र-मण्डल विश्वविद्यालय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए.................श्री रामफल, सैक्रेट्री जनरल, राष्ट्रमण्डल, ने कहा था, इस धनराशि से करोड़ों वंचित लोगों की स्वास्थ्य की, पेयजल की, शिक्षा की, पर्यादूषण की समस्याएं हल हो सकती है। लेकिन पश्चिमी राष्ट्रों मे तो आयुद्ध निर्माण की होड़ लगी है। पश्चिमी देश अपनी सुरक्षा हेतु आयुध निर्माण करें, सो करे, लेकिन वह तो तीसरे विश्व के देशो मे आयुध बेचते हैं और एक देश मे दूसरे देश के प्रति भय और आशका पैदा करते हैं, जिससे उनके आयुध निर्माण के कारखाने चलते रहें। इससे विश्व मे विस्फोटक स्थिति तो पैदा होती है, साथ मे अरबों रूपया निर्माण कार्यों की बजाय विध्वंसक कार्यों मे नष्ट होता है।

जर्मनी में नाटों के लिये अस्त्रों के बेस बनाने से काफी खलबली है, ऐसा प्रतीत हुआ। प्रबुद्ध जर्मन विचारक अपने आपको इस विषय में असहाय सा पाते हैं। वह कहते हैं, ऐसे बेस जर्मनी की बजाय अमरीका में क्यों नहीं बनाये जाते हैं। अतः यहां भी विश्व शान्ति आन्दोलन दबी-दबी आवाज में सही, पनपता नजर आता है।

जर्मन लोगों ने गत महायुद्ध में बहुत बरबादी देखी । नगरों के नगर तबाह हुए। जानो-माल का अनगिनत नुकसान हुआ। वह इस नाटक को दोहराना नहीं चाहते। लेकिन क्या करें ? आज उनकी स्थिति दयनीय नजर आती है।

उन्होंने गत ३० वर्षों में अपने देश को पुनः आर्थिक उन्नति के शिखर पर ला खड़ा किया है, यह निर्विवाद है। इसमें बाहरी सहायता के अलावा जर्मन कला-कौशल को भी श्रेय देना होगा। जर्मन लोग मेहनती हैं, पुरुषार्थी हैं, ज्ञानी हैं, कलाकौशल में में सिद्धहस्त हैं। यहां ज्ञान और कर्म का यथेष्ठ मेल है। इस लिये जर्मनी आज पुनः विश्व के समृद्ध देशों में गिना जाता है। लेकिन मानवता का यहां भी ह्रास होता जा रहा है।

साधारण जर्मन भयभीत है, और साथ में यहां प्रतियोगिता की होड़ इतनी बढ़ती जा रही है कि मानव मानव भक्षी बनता जा रहा है। हरेक व्यक्ति अपनी दौड़ में व्यस्त है। पड़ोसी, साथी सहयोगी के लिये किसी के पास समय नहीं है। अभी भी विदेशियों को यह लोग अनादर की दृष्टि से देखते है। उनके लिये उन्नति के स्थान अवरुद्ध हैं।

यही स्थिति इंगलैंड में भी दृष्टिगत हुई। हां, आयरलैंड में भारतीयों के प्रति श्रद्धा है।

ऐटनबरो की गांधी फ़िल्म की चर्चा होनी ही थी। लोगों की समझ से बाहर है कि अहिंसा से हिंसा पर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है। गांधी एक अजीबोगरीब व्यक्तित्व का मालिक था अवश्य, पर उसकी प्रणाली उसका दर्शन व्यावहारिक हो, ऐसा नहीं समझा जाता। यहूदियों को उसने शान्ति पूर्वक असहयोग और सत्याग्रह का मंत्र दिया था, परन्तु जैसी स्थिति तब थी, उससे यह मंत्र कोरा क़ागजी पत्र ही सिद्ध होता, और हुआ भी ऐसा, यह उनका मंतव्य था।

हिटलर का नाम लेने से यह लोग संकोच करते हैं। तीसरी राइख की ज्यादतियों की याद कड़वी है। मैंने जब हिटलर द्वारा प्रतिपादित आर्यजाति और स्वस्तिका का जिक्र किया तो यह लोग चौंके। मैंने जब भारत के स्वाधीनता संग्राम में दोनों विश्व महायुद्धों में जर्मन सहायता का वर्णन किया तो यह लोग चकित हुए। हां, साहित्य के क्षेत्र में विशेषकर भारतीय साहित्य के क्षेत्र में जर्मन अनुसंधान के प्रयत्नों का इन्होने स्वागत किया।

इस दिशा में भारतीय और जर्मन बुद्धिजीवी मिलकर अनुसंधान करें तो बहुत से अन्य तथ्य उभरकर सामने आएंगे और भारत और जर्मनी के मध्य एक सेतु स्थापित हो पायेगा जो दोनों के लिये कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है।

इसी विषय को लेकर भारत की विदुषी कौंसिल जनरल श्रीमती कुमार से भी लम्बी-चौड़ी बात हुई। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी के कार्यक्रम में दिलचस्पी प्रकट की और चाहा कि मैं उन्हें इस संबंध में पूर्ण सामग्री भेजूं ताकि वह यहां के बुद्धिजीवियों के साथ विस्तार से विचार-विमर्श कर सकें।

लन्दन में स्कूल आफ ओरियेंटल और अफ्रीकन स्टडीज के डायरेक्टर प्रो० कोवन ने बताया था कि अब वहां संस्कृत मे दिलचस्पी कम हो गयी है। कारण कि इससे किसी को रोजी कमाने में कोई लाभ नहीं। हाई कमीशन के शिक्षा अधिकारी श्री मुखर्जी ने बताया कि वहां आयुर्वेद में जरूर दिलचस्पी है और यदि हम लंदन में सस्कृत के प्रति रूचि पैदा करना चाहते हैं तो लंदन विश्वविद्यालय में आयुर्वेद की चेअर प्रतिष्ठित करनी चाहिए। उसके द्वारा संस्कृत मे पुनः रूचि जागृत की जा सकती है। अभी भारत सरकार स्कूल आफ ओरियेंटल स्टडीज को केवल ७५० पौंड वार्षिक अनुदान देती है जो कुछ भी न देने के बराबर है। कम से कम १२,००० पौंड तो देना ही चाहिए, जो एक लेक्चरार का वेतन है। इसी प्रकार दोनों देशों के मध्य विद्वान् प्रोफेसरों के आवागमन की व्यवस्था करनी चाहिए।

यह जानकर मुझे अचम्भा नहीं हुआ कि बहुत से जर्मन और अंग्रेज अध्यापको ने वेदों का नाम तक नहीं सुना। स्वामी दयानन्द की बात तो दूर रही। जब मैंने उन्हें बताया कि दयानन्द मार्टिन लूथर की तरह सुधारक था और आर्य समाज का आन्दोलन प्रोटेस्टेंट के आंदोलन की तरह सुधार आंदोलन है तो उनकी जिज्ञासा कुछ जगी। जब मैंने उन्हें बताया कि दयानन्द कार्ल मार्क्स का समकालीन था और यह कि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक मार्ग साम्यवाद और पूंजीवाद के मध्य का मार्ग है जिसमें व्यक्ति के सम्मान और समाज के हित दोनों की सुरक्षा की व्यवस्था है तो उनकी जिज्ञासा और तीव्र हुई।

स्पष्ट है कि वेद का संदेश विश्व में फैलाने के लिए वेद के झण्डाधिकारियों को अभी बहुत तपस्या और तैयारी करनी है। सर्वप्रथम तो वेद के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करने हैं, फिर वेद के दूत विभिन्न देशों में भेजने हैं। तभी जाकर कहीं वेद प्रचार होगा।

इस विषय पर मेरी नैरोबी के प्रतिष्ठित आर्य नेता पण्डित सत्यदेव जी और आर्य समाज लंदन के प्रधान प्रोफैसर भारद्वाज से भी बातचीत हुई। यह दोनों भी इसी विचार के हैं। प्रो० भारद्वाज मेरे साथ लन्दन ओरियेंटल स्कूल भी गए और वह इस संबंध में बातचीत का सिलसिला जारी रखेंगे।

अन्त में यह उल्लेख करना चाहूंगा कि जिस मोहल्ले में प्रो० मल्होत्रा रहते हैं वहां के चर्च के लिए मोहल्ला वासियों को जबरन टैक्स देना पड़ता है। श्रीमती रूथ मल्होत्रा जर्मन ईसाई विदुषी हैं। वह इस चर्च की सदस्या हैं और उन्हें प्रतिमास अपनी आय का २.५% कर के रूप में इस चर्च को देना पड़ता है। इसी आय से चर्च का कारोबार चलता है और चर्च अपनी विचारधारा प्रसारित करने में सफल होता है।

यहां यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि ब्रेसेल्ज में जिस होटल मे हमें योरूपीयन टूर के दौरान ठहराया गया था वहां बाईबिल के उद्धरणों को लेकर चार भाषाओं में प्रकाशित एक ग्रंथ पड़ा हुआ था। उस पर लिखा हुआ - यह प्रति आपकी है, ले जाईये। हां, अमुक संस्था को इसके लिये ३ डालर भेज दीजिये।

क्या गुरुकुल कांगड़ी का आर्य समाज भी इस प्रकार का कार्य हाथ में ले सकता है ? जब ऐसा हो सकेगा तभी हम ऋषि के ऋण से उऋण होंगे।

# निरन्तर-शिक्षा

ले०—माननीय बलभद्र कुमार हूजा,
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

निस्सन्देह शिक्षा क्रम ग्रायु पर्यन्त चलता रहता है। जो विचारक पुर्नजन्म में विश्वास रखते हैं उनके ग्रनुसार तो यह क्रम जन्मजन्मान्तर तक चलता रहता है।

योरोपीय विचारकों का ध्यान इन दिनों जोर-शोर से इस प्रक्रिया की ग्रोर ग्राकृष्ट हुग्रा है। यह सिद्वान्त कि शिक्षा विश्वविद्यायय की उपाधि प्राप्त करने के बाद समाप्त हो जाती है ग्रब निरस्त हो चुका है। कहा जाता है कि हर दशक मे ज्ञान का विस्तार दुगुना हो जाता है। दूसरे शब्दों मे जो स्नातक ग्राज यह समझ कर चलता है कि वह सर्वज्ञानी है, तीस बरस का होते-होते ग्रर्द्ध ज्ञानी हो जायेगा, ४० बरस का होते-होते चौथाई ज्ञानी रह जायेगा ग्रौर ५० वर्ष की ग्रायु मे एक ग्राठवां तथा इस प्रकार क्रमश: उसका ज्ञान कम होता जायेगा।

ज्ञान-विज्ञान में जो निरन्तर परिवर्धन होता जा रहा है, उसमें ग्रप-टू-डेट रहना तो ग्रब कठिन हो गया है। हां, ज्ञान विज्ञान के रहस्यों को किस प्रकार खोजा जाये ग्रौर जो सूचना ग्रथवा ज्ञान किसी भी समय किसी को चाहिए उसको कहां से, कैसे प्राप्त किया जाये, इसको भी समझने के लिये निरन्तर प्रशिक्षण की ग्रावश्यकता है।

ग्राज कम्प्यूटर के युग में साधारण पढ़ने लिखने की भाषा भी लुप्त होती जा रही है। कम्प्यूटर की ग्रपनी भाषा है ग्रौर तकनीकी तौर पर उन्नत देशों में ग्राज का विद्यार्थी समुदाय ग्रौर शिशु समुदाय उसके प्रयोग से शिक्षा ग्रहण कर रहा है।

स्वास्थ्य हो, इंजीनियरिंग हो, व्यापार हो, सभी क्षेत्रों में ग्रबाध गति से ज्ञान परिवर्धन हो रहा है। जो व्यवसायी ग्रपने-ग्रपने पेशे मे ग्रप-टू-डेट रहना चाहते हैं, वह ज्ञान परिवर्धन के मौके खोजने में सजग रहते हैं। यह महसूस किया जा रहा है कि विश्व-विद्यालय इस दिशा में सार्थक सिद्ध हो सकते हैं। **विश्वविद्यालय विद्या ग्रौर ज्ञान के भण्डार हैं।** वह नये-नये लम्बे-छोटे भिन्न ग्रवधियों के

कोर्स चलाकर जिज्ञासु लोगों की ज्ञान पिपासा शान्त कर सकते हैं।

उन्नत देशों में ज्ञान के प्रसार और प्रवाह हेतु तरह-तरह के उपकरण तैयार हो चुके हैं और उनमें निरन्तर सुधार जारी हैं। अब विषय विशेष की सीमायें भी नष्ट प्रायः हो चुकी हैं। विभिन्न विषयों के परस्पर मेल से ही विश्व के रहस्य उद्घाटित होते हैं। यह सिद्धांत अब सर्व मान्य हो चुका है।

भारत के ऋषि-मुनि भी इसी विचारधारा के थे। आजकल यहां आक्सब्रिज माडल के अनुकरण में ३ विषयों को लेकर ही डिग्री प्रदान की जाती है। लेकिन जिस भारतीय शिक्षा विधि का ऋषि दयानन्द ने प्रतिपादन किया, उसके अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम मे, गुरुकुल मे रहते हुए निरन्तर १६-१७ वर्ष तक ब्रह्मचारी को २०-२५ से अधिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना होता था। वेद वेदांग के अतिरिक्त उसे आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थ वेद का ज्ञान प्राप्त करना होता था। फिर इतिहास, भूगोल, अंकगणित, बीजगणित, खगोल शास्त्र, ज्योतिष विद्या ऐसे अनेक शास्त्रों का अध्ययन करना होता था जिससे कि एक ब्रह्मचारी विभिन्न विषयों में अभ्यस्त होकर निकलता था। इस के साथ ही उसके गुण-कर्म और स्वभाव के अनुसार यह भी निश्चित किया जाता था कि उसने किस वर्ण मे प्रवेश करना है, अर्थात् उसने ब्राह्मण का, क्षत्रिय का, वैश्य का अथवा कोई अन्य पेशा अपनाना है। फिर उसे तदनुसार यथायोग्य विषयों में पारंगत किया जाता था।

वैदिक काल में शिक्षा यहीं समाप्त नहीं हो जाती थी। गृहस्थाश्रम में रहते हुए गृहस्थों को समय-समय पर विभिन्न पर्व, यज्ञ और संस्कार रचाने होते थे। प्रत्येक पर्व, यज्ञ और संस्कार भी निरन्तर शिक्षा का प्रबल साधन होता था। इन अवसरों पर गृहस्थ को उसके सामाजिक, पारिवारिक तथा राष्ट्रीय पर्वों-कर्तव्यों का बोध कराया जाता था जिससे कि वह सत्पथ पर आरूढ़ होकर जीवनयापन करे। तत्पश्चात् वान-प्रस्थाश्रम तो विशेषतः अध्ययन, अध्यापन, मनन, चिन्तन के लिये सुनिश्चित था ही।

आज भी ज्ञान-विज्ञान के विस्तार के इस युग में प्रबुद्ध शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो रहा है। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु अब जगह बजगह खुले विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं। जिनमें प्रौढ़ अवस्था के लोगों को ज्ञान परिवर्धन के अवसर उपलब्ध होते हैं। इनमें विशेषकर तीन कार्यक्रमों पर ध्यान दिया जाता है।

१- चेतना वर्धन ।
२- तकनीकी ज्ञान का हस्तान्तरण ।
३- विशेषज्ञों को अप-टू-डेट करना ।

इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालय अधोलिखित तीन अन्य कार्य भी हाथ में ले सकते हैं ऐसा विद्वानों का मत है ।

१- विकास नीति का दिग्दर्शन ।
२- अनुसन्धान और विकास के कार्यक्रम
३- सलाह, मशवरा, सम्मति प्रदान ।

स्पष्टतः यह तीनों कार्य एक दूसरे से मिले-जुले हैं । इनको हाथ में लेकर विश्वविद्यालय समाज के विभिन्न क्षेत्रों के लिये कौन सी तकनीक उपयुक्त है, इस बारे में समुचित निर्देशन देने में समर्थ होंगे । विश्वविद्यालयों के लिये यह भी आवश्यक है कि वह विभिन्न दिशाओं में अपने प्रयोगों का उल्लेख करें ताकि उन क्षेत्रों के कार्य कर रहे अन्य कार्यकर्त्ता उनके प्रयोगों से लाभान्वित हो सकें । सफलताओं असफलताओं का समुचित विश्लेषण हो जिससे ज्ञान धारा अग्रसारित होकर राष्ट्र कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे ।

राष्ट्र के समक्ष आज क्या समस्याएं हैं ? अगले २० वर्षों में क्या-क्या समस्यायें आने वाली हैं ? उनका निराकरण कैसे होगा ? विश्वविद्यालयों का यह मुख्य कर्त्तव्य हो जाता है कि उन पर विचार करें । उनके समाधान ढूंढे । आखिर विश्वविद्यालयों मे ही विचारक ब्राह्मणों का निवास है । वहीं ब्रह्म विद्या के ज्ञाता रहते हैं । वहां से राष्ट्र की, विश्व की समस्याओं का हल नहीं निकलेगा तो कहां से निकलेगा ? इस पवित्र कर्तव्य से विद्या के भण्डारों के भण्डारी विमुख नहीं हो सकते । यह उनका परम कर्तव्य-धर्म है ।

यह धारणा कि विश्वविद्यालय का काम केवल डिग्री प्रदान करना है, मूलतः निरस्त हो जानी चाहिए । उपाधि प्रदान तो शिक्षा की प्रक्रिया में एक चरणमात्र है । शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी में स्वाध्याय को निरन्तर शिक्षा की जिज्ञासा उत्पन्न करना होना चाहिए । तभी तो वैदिक शिक्षा प्रणाली में समावर्तन के समय गुरु शिष्य को उपदेश देता था कि स्वाध्याय से कभी जी मत चुराना और सर्वदा दान देना अर्थात् आज के सन्दर्भ में करों की चोरी न करना, क्योंकि दान अर्थात् कर से ही तो शिक्षालय विद्यालय गुरुकुल चलते हैं । केवल आदर्शवाद से गाड़ी कहां तक खिंचेगी ? हर संस्था

के संचालन के लिये हर कार्यक्रम के बढाने के लिये द्रव्य और साधनों की आवश्यकता होती है। व्यवहार कुशल प्रशासक इस दिशा मे निरन्तर सचेष्ट रहते हैं। हा, यह भी आवश्यक है कि प्राप्त द्रव्य का प्रयोग ठीक प्रकार से हो। उसके व्यय में धांधली न हो। इस हेतु आडिट की, जवाब तलबी की, निश्चित समय पर आय-व्यय का हिसाब किताब प्रस्तुत करने की, आक्षेपों के उत्तर देने की व्यवस्था सभी प्रजातान्त्रिक संस्थाओं, समाजो मे होती है, ताकि कोई भी प्रशासक अथवा राजा निरंकुश होकर मनमानी न करने पाये।

## निरन्तर शिक्षा के साधन

प्रश्न उठता है कि निरन्तर शिक्षा के साधन क्या हों? भारत में इस विषय पर बहुत प्रयोग हो चुके हैं। अपठित लोगो के लिये रेडियो वरदान सिद्ध हुआ है। अब दूरदर्शन और उपग्रह भी उपस्थित हो गये हैं। अलबत्ता आवश्यकता इस बात की है कि इनके प्रोग्राम समस्या पूर्ति से जुड़े हुए हो।

बहुत दिन हुए राजस्थान के गगानगर जिले मे दौरा करता हुआ मैं एक ग्राम में पहुंचा। एक स्थाननीय कृषक से बातचीत हुई। उसकी खेती बहुत समुन्नत थी। मैंने पूछा कि उसने प्रशिक्षण कहां से प्राप्त किया। कहने लगा, रेडियो से। मैंने फिर पूछा, रेडियो वालो के लिये कोई सदेश देना चाहोगे। बोला, उनसे कहिए जनवरी, फरवरी मार्च का उल्लेख न करके चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ की बात किया करे तो हमे अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। सदेश स्पष्ट है, जिस व्यक्ति का प्रशिक्षण अभीष्ट है, उसी की मातृभाषा मे बातचीत, प्रोग्रैम हो तो अधिक उपयोगी सिद्ध होगे।

अब तो विडियो, टेप्रिकार्डर, कैसेट भी उपलब्ध है। केवल इस बात पर ध्यान रखना होगा कि उनके द्वारा दिये गये प्रोग्राम सात्विक हों।

यही सिनेमा के सबंध मे भी कहना चाहिए। उपग्रह के आ जाने से अब दूर से बैठे व्यक्ति तक पहुंचा जा सकता है।

विश्वविद्यालयो के पास ज्ञान के भण्डार हैं। अत. आधुनिक युग मे उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह जिसे साफ्ट वेयर अथवा प्रोग्राम कहते हैं, तैयार करे। इसके लिये निरन्तर मेहनत करनी होगी। सैकडों घंटे काम करना होगा। रिहर्सलें करनी होंगी। तब कही जाकर अच्छे दर्शनीय प्रोग्राम तैयार होगे। राष्ट्रीय टी०वी० पर वीडियो पर अधकचरे प्रोग्राम नही चलेंगे।

प्रोग्राम बनाने के अतिरिक्त, विश्वविद्यालय अपनी क्षमता के अनुसार अपनी विस्तार सेवायें भी जनसाधारण के हित के लिये समर्पित कर सकते हैं। व्यक्तिगत सम्पर्क के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों द्वारा अपने ज्ञान का प्रकाश चहुं ओर फैला सकते हैं। ये कुछ दिशाएं जिन में अध्यापक वर्ग, गुरुजन अर्थात् ब्राह्मण उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

आर्य समाज का एक नियम यह है कि आर्य सभासद् को केवल अपनी उन्नति से ही सन्तुष्ट नही होना चाहिए। समाज की उन्नति के लिये निरन्तर सेचेष्ट रहना चाहिए। इस प्रयास में विश्वविद्यालय छोटे-छोटे कोर्स भी चला सकते हैं।

अध्यापकों को सप्तवर्षीय अवकाश भी प्रदान किये जा सकते हैं। जिनसे वह जहां-तहां जाकर अपने मानसिक तथा आध्यात्मिक क्षितिज विस्तृत कर सकें और पुनः अपने विश्वविद्यालय में आकर अधिक उपयोगी सिद्ध हों।

राष्ट्र के राजनैतिक नेताओं, अफसरों, कर्मचारियों, कारखानेदारों, किसानों, मजदूरों के पास अपार शक्ति है। आवश्यकता है दिशा निर्देशन की। ध्रुव मार्ग दिखलाने की - यह है कार्य आज के युग में विश्वविद्यालयो का, क्योंकि वैदिक परिभाषा मे वही आजकल के गुरुकुल हैं।

# तेहरवाँ राष्ट्रमंडल विश्वविद्यालय सम्मेलन बरमिंघम - I

डॉ० माननीय बलभद्र कुमार हूजा,
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मैं और राजकोट विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर दवे ग्यारह अगस्त की शाम को ६ बजे बरमिंघम न्यू स्ट्रीट स्टेशन पर पहुंचे। विश्वविद्यालय का लाल कुर्ती वाला एक स्वयं सेवक स्टेशन पर उपस्थित था। उसने हमें हाई - हाल छात्रावास की टैक्सी कर दी।

हाई हाल पर तो कितने ही लाल कुर्ती वाले स्वय सेवक उपस्थित थे। रजिस्ट्रेशन कार्ड दिखलाने पर फौरन कमरे की चाबी ले आये। हमारा सामान अपने-अपने कमरे में पहुँचा दिया गया।

मुझे १२वी मजिल पर १२१२ नम्बर का कमरा मिला। मेरे साथ ही तमिल विश्वविद्यालय के प्रो० सुब्रह्मण्यम् ठहरे हुए थे। तत्काल ही चासलर - सर पीटर स्काट की ओर से रिज हाल में रिसैप्सन था। फौरन तैयार होकर वहा पहुँचे बहुत से भारतीय डैलीगेट आए हुए थे। सब से मुलाकात हुई।

१२-१३ अगस्त को विश्वविद्यालय कैम्पस में कुलपतियों का सम्मेलन था। लीवर ह्यूम रिर्पोट पर बहस हुई। इंग्लैण्ड में लीवर ह्यूम एक विख्यात ट्रस्ट है। इन्होंने इंग्लैण्ड की शिक्षा संबंधी समस्याओं की जांच हेतु एक समिति नियुक्त की थी। उसी समिति की यह रिर्पोट कुलपतियों के सम्मुख विचार हेतु प्रस्तुत हुई। लीवर ह्यूम रिर्पोट में अब ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों को फिर से दो वर्ष का डिग्री कोर्स अपनाने के लिये प्रेरित किया गया है। हमारे यहा तो कई विश्वविद्यालयों ने १२+३ की प्रणाली स्वीकार कर ली है। कई अभी भी १२+२ के कोर्स पर कायम हैं। उत्तर प्रदेश में भी अभी १२+२ ही चल रहा है।

मुझे याद है १९६३ में जब दिल्ली कुलपति सम्मेलन में १२+३ का प्रस्ताव

उपस्थित हुआ था तो कई कुलपतियो ने कहा था कि हम सभी १२+२+२ की उपज है। १२+३+२ की ऐसी क्या उपयोगिता होगी, समझ से बाहर है। अब फिर इस विषय पर बरमिंघम में सवाद हुआ तो कईयो ने ठीक ही कहा - १२+२ हो अथवा १२+३ हो, यह निरर्थक है - देखना यह है कि २ वर्ष अथवा ३ वर्ष की अवधि मे विद्यार्थी कितना अध्ययन करता है। कितने दिन पठनपाठन होता है। यदि ३ वर्षों में ६-६ मास विश्वविद्यालय बन्द रहे तो ३ वर्ष का लाभ क्या हुआ? यदि २ वर्ष मे विद्यार्थी २००-२५० दिन काम करे तो अधिक लाभ होगा।

इस सदर्भ मे कनाडा का प्रयोग भी प्रस्तुत हुआ। वहाँ ३ वर्ष की पाबन्दी इस प्रकार है कि १२ के बाद ३ वर्ष से कम मे डिग्री नही मिलती। डिग्री लेने के लिए १५ क्रेडिट कोर्स करने पढते हैं। प्रतिवर्ष ५ से ज्यादा क्रेडिट कोर्स कोई नही ले सकता - हा, कम चाहे लेले। जब कोई विद्यार्थी १५ क्रेडिट कर लेता है - चाहे ३ वर्ष मे करे - ५ वर्ष मे करे अथवा अधिक समय मे - वह रजिस्ट्रार को लिखकर उपाधि प्राप्त कर सकता है। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार पठन-पाठन करते हैं। हर क्रेडिट कोर्स की जुदा-जुदा फीस होती है जो उसे चूकानी पढती है। इसलिये विद्यार्थी क्रेडिट कोर्स लेकर तन्मयता से काम करता है क्योकि उसने उसकी फीस दी होती है। वह चाहता है कि उससे पूरा लाभ उठाये। गुरुजन भी जिम्मेवारी से काम करते है क्योकि उन्होंने कोर्स के लिए फीस चार्ज की होती है और उनका कर्तव्य हो जाता है कि अपनी जिम्मेवारी निभाये। इस प्रकार कोर्स केवल डिग्री प्राप्त करने के साधन न रहकर योग्यता और कार्य-कौशल बढाने का साधन हो जाता है।

जो लोग साथ-साथ नौकरी अथवा धन्धा करने पर मजबूर होते हैं, या जिन्हे किसी कारण से कोर्स बीच मे छोडना पड जाता है, वे भी इन कोर्सो का यथासम्भव लाभ उठाते है।

यह तो अब स्पष्ट ही है कि भारत मे आक्सब्रिज माडल असफल हो चुका है। नये माडल की तलाश मे भी हमे अब दूर नही जाना है। १९६२ मे, अमेरिका के लैंडग्राट कालिजो के माडल पर भारत मे, पन्तनगर, उदयपुर, लुधियाना में कृषि विश्वविद्यालय स्थापित किये गये थे। उनमे अनुसन्धान और अध्यापन के अतिरिक्त विस्तार प्रचार की जिम्मेवारी भी शिक्षको पर डाली गई थी। इसी कारण कृषि विश्वविद्यालय के स्नातको ने गत २० वर्षों में वैज्ञानिक कृषि के विस्तार हेतु जो कार्य किया है वह अनुकरणीय है। उन्ही की प्रेरणा से भारत का साधारण कृषक अब आधुनिक कृषि युग में प्रवेश कर चुका है और भारत मे हरित क्रान्ति का जो सत्रपात हुआ उसका श्रेय कृषि विश्वविद्यालयो की समुचित मात्रा मे मिला ही चाहिए।

भारत के साधारण विश्वविद्यालयो मे अभी विस्तार कार्य उपयोगिता को उचित

महत्व नहीं दिया जा रहा।

बरमिंघम के सम्मेलन में यह बात उभर कर आई कि विश्वविद्यालय का मुख्य कर्तव्य अपने इर्द-गिर्द रोशनी फैलाना है, अर्थात् अपने अनुसन्धान के परिणामों को जनसाधारण तक पहुंचाना विश्वविद्यालय का परम् कर्तव्य है वह इसे टाल नही सकता। विश्वविद्यालय का आधार एक तिपाये स्टूल पर समझिये जिसका एक पांव अनुसंधान का है, एक प्रशिक्षण का और एक विस्तार का।

इस प्रकार ही विश्वविद्यालय (जो समाज से अर्थ लाभ करते हैं) अपने अस्तित्व की भूमिका कर कृतकृत्य हो सकते हैं।

इसी भावना से प्रेरित होकर ही स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की गई थी। वह भारत की तत्कालीन शिक्षा प्रणाली से जो आक्सब्रिज माडल पर आधारित थी, असन्तुष्ट थे। वही चाहते थे कि हमारे युवक केवल क्लर्क अथवा राज्य प्रशासन के पुर्जे बनकर रह जायें। इसीलिए उन्होंने गुरुकुल द्वारा वैदिक शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करने का आन्दोलन चलाया। इस प्रणाली का परम् लक्ष्य विद्यार्थी की शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक उन्नति के अतिरिक्त उसे अर्थकरी विद्या से लाभान्वित करना भी इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य है। इसके उद्देश्य को लेकर गुरुकुल मे कई प्रकार के धंधे सिखलाने का कार्यक्रम भी हाथ मे लिया था और कालक्रम मे आयुर्वेद और कृषि विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई।

शुरू-शुरू में गुरुकुल के संस्थापक और सचालक उच्च आदर्शों से प्रेरित थे। ६० वर्ष तक गुरुकुल ने दिग्गज महारथी पैदा किये, जिन्होंने देश-विदेश मे खूब जल-चल मचाई। इतिहास के क्षेत्र में क्या, राजनीति के क्षेत्र मे क्या, आयुर्विज्ञान के क्षेत्र मे क्या, पत्रकारिता के क्षेत्र मे क्या, सर्वत्र खूब योगदान दिया। परन्तु जब गुरुकुल का संचालन स्वार्थी बौनों के हाथ मे आया तो गुरुकुल का ह्रास अवश्यम्भावी था। जब बड़े छोटे मनुष्यो के हाथ मे आ जाएं तो उपलब्धि का स्तर गिर ही जाता है।

जहां तक प्रणाली का सम्बन्ध है, कार्य विधि का संबंध है, लक्ष्य-बोध और पथ का सम्बन्ध है वैदिक पथ के अतिरिक्त अन्य कोई पथ है ही नही - लेकिन आवश्यकता है इस पथ को पहचानने और उस पर चलने वाले गुरुजन की - जो पुनः देश की बीमार शिक्षा संस्थाओं के पथ प्रदर्शक बन सके, उन्हें पथ्य प्रदान कर सके।

— 0 —

# तेहरवाँ राष्ट्रमंडल विश्वविद्यालय सम्मेलन
# बरमिंघम – II

डॉ० माननीय बलभद्र कुमार हूजा,
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

१५ अगस्त को बरमिंघम विश्वविद्यालय के भव्य हाल में सर एलिक मैरिसन, अध्यक्ष, राष्ट्रमण्डल विश्वविद्यालय संगठन और सर पीटर स्काट, चांसलर, बरमिंघम विश्वविद्यालय के स्वागत भाषणों से कांग्रेस का शुभारम्भ हुआ। मुख्य अथिति थे- राष्ट्रमण्डल के जनरल सैक्रेटरी श्री दत्त रामफल। उन्होंने अपने भाषण में जनसाधारण की दरिद्रता और आवश्यकताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि जितना व्यय आज सामरिक अस्त्र-शास्त्रों के उत्पादन पर हो रहा है उसके अंश मात्र से ही विश्व के जनसाधारण की स्वास्थ्य, निवास, अज्ञान और अभाव की समस्याओं का निराकरण हो सकता। उन्होंने कहा कि इस वर्ष विश्व का फौजी व्यय ६.५० बिलियन डालर है, अर्थात् प्रतिमिनट १.२ मिलियन डालर (बारह लाख डालर अथवा १२ करोड़ के रुपये के लगभग) इस प्रकार जो व्यय फौज पर आठ घंटे में होता है, विश्व भर से मलेरिया का आतंक समाप्त कर सकता है और लगभग २० करोड़ व्यक्तियों का जीवन स्तर ऊंचा कर सकता है। परन्तु ऐसा हो नही पा रहा।

उन्होंने कहा कि १९६६ में पृथिवी का पहला चित्र आकाश से खेंचा गया था। जब अन्तरिक्ष यात्री चांद पर पहुंचे तो उन्होंने पृथिवी को एक तारे की भांति उगता हुआ देखा। अब पृथिवी एक गांव के सदृश छोटी हो चुकी है। सभी मानव समुदाय को मिलजुल कर अपनी साझी समस्याओं का निदान करना होगा।

उन्होंने ब्रांट रिपोर्ट का उल्लेख करते हुए कहा कि गरीब देश अनिश्चितता और कानूनी तोड़-फोड़ के वातावरण में उन्नति नही कर पायेंगे। हम ऐसा वातावरण चाहते है जिसमें सभी को बराबर न्याय मिले और राज्य व्यवस्था खुली और कानून पर आधारित हो। गुरुदेव टैगोर की विश्वविख्यात कविता का उद्धरण देते हुए उन्होंने कहा कि हम ऐसा संसार बनाना चाहते हैं जो तंग घरेलू दीवारों से टुकड़े-टुकड़े न हो चुका हो। जवाहर लाल नेहरू के मशहूर वाक्य को दोहराते हुए उन्होंने कहा कि सब से खतरनाक वह दीवार हैं जो मन में खड़ी हो जाती हैं, जो हमें गलत परम्पराओं को

भंग करने से रोकती हैं और नये विचारों को इस लिये ग्रहण नहीं करने देतीं क्योंकि वह अपरिचित से होते हैं।

विश्वविद्यालयों का यहां मुख्य कर्तव्य है कि वह समाज में बौद्धिक और नैतिक नीवें प्रतिष्ठित करें और सार्वभौम भविष्य के निर्माण के लिये प्रबुद्ध स्नातकों को तैयार करें।

यही बातें अपनी-अपनी तरह से भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा निरन्तर प्रशिक्षण और ग्राम सुधार की गोष्ठियों में भी उठाई गई। लेकिन विश्व के समृद्ध देशों के प्रबुद्ध शिक्षा शास्त्रियों की प्रतिक्रिया कुछ ऐसी लगी जैसे-शुतुरमुर्ग रेत मे अपना सिर दबा देता है। इस आशा से कि रेत की आंधी ऊपर से टल जायेगी।

समृद्ध देशों की समस्या मुख्यतः बेकारी की है। टैक्नालोजी में जो असाधारण प्रगति हो रही है उससे पठित लोगों को कैसे निरन्तर अवगत कराया जाये ताकि वह उसका पूरा लाभ उठा सकें और आने वाले कल मे उनकी कार्यक्षमता अप-टू-डेट रहे और वह अपने प्रतियोगियों से पिछड़ न जाये इससे वह चिन्तित हैं।

इसी समस्या को लेकर बरमिंघम नगर के दूसरे विश्वविद्यालय ऐस्टन के चांसलर सर एड्रियन कैडबरी ने कांफ्रेंस के सन्मुख अपना उद्बोधन भाषण दिया। उन्होंने क्वैकर समुदाय का दृष्टान्त देते हुए कहा कि प्रतिष्ठित जनसमुदाय जिन लोगों का तिरस्कार करता है वही ससार में क्रान्ति लाते है। ऐसे ही लोग क्वैकर थे। वह श्रमिक वर्ग का सम्मान करते थे। आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति मे विश्वास रखते थे। उन्हें ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों मे प्रवेश नही मिलता था। सो उन्होंने अपने स्कूल खोले और इस प्रकार सभी के लिये अध्ययन-अध्यापन के साधन प्रस्तुत किये। यही लोग देश में टैक्नोलोजिकल क्रान्ति के कर्णधार बने। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय का कर्तव्य केवल मनुष्यों की ससारी योग्यता बढाना ही नही होना चाहिए, किन्तु विश्वविद्यालय को ऐसे मनुष्य तैयार करने चाहिएं जो संसार को बदलने सवारने मे पूरा सहयोग दे और संसार में हौंसले और दृढ़ संकल्प से आचारण करे। इस हेतु समाज और विश्वविद्यालय मे घनिष्ठ सबंध होना चाहिए। परस्पर मेल-जोल हो। विश्वविद्यालय इस प्रकार के मेल-जोल के मिलन स्थल बन सकते हैं। वही नये नये विचार पैदा हों जो मिट्टी की और मानसिक दीवारें तोड़ कर यत्र-तत्र–सर्वत्र फैले। आज विश्व तरह-तरह की जटिल समस्याओं से घिरा हुआ है। उनको सुलझाने की जिम्मेदारी से विश्वविद्यालय भाग नही सकते। विश्व की समस्याओं को सुलझाने के सदर्भ मे ही विश्वविद्यालय का अस्तित्व सार्थक होगा।

इस कान्फ्रेंस में मुख्य विषय तो था-तकनीकी आविष्कार और विश्वविद्यालयों की भूमिका-इसी विषय को लेकर निम्न प्रकार पांच गोष्ठियों का निर्माण किया गया-

१- तकनीकी आविष्कार के सामाजिक परिणाम।
२- सर्वांगीण ग्राम सुधार मे विश्वविद्यालयों की भूमिका।
३- विश्वविद्यालय और उद्योग का परस्पर सहयोग।
४- तकनीकी ज्ञान का विकास और प्रसार।
५- निरन्तर शिक्षा।

मैंने दूसरे और ५वे विषयों की गोष्ठियों मे भाग लिया।

१९५२ मे भारत में अमेरिका के सहयोग से सामुदायिक योजनाओं का आरम्भ हुआ था। उससे पहले गांधी जी ने आजादी के आन्दोलन के साथ-साथ सदा ही ग्राम सुधार पर जोर दिया था। गोसेवा, ग्रामोद्योग खादी, अस्पृश्यता निवारण उनके कार्य-क्रम के मुख्य अंग थे।

पहले केवल स्वय सेवको द्वारा ही यह कार्य उठाये जाते थे। फिर भारत की प्रदेशिक सरकारो ने भी देहात सुधार के महकमे खोले। लेकिन आजादी के बाद जब सामुदायिक योजनाये आरम्भ हुई तो श्री एस कैडे के ओजस्वी नेतृत्व मे सरकारी तन्त्र ने इस कार्य को जोर शोर से हाथ में लिया। विस्तार सेवाओ का सारे देश मे जाल सा बिछ गया।

इसके बाद १९५९ मे जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे राजस्थान के नागौर नगर में पंचायती राज का शुभारम्भ हुआ। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के जिम्मे ग्राम सुधार खेती सुधार इत्यादि का सर्वांगीण कार्य सौंपा गया। फिर भी तकनीकी प्रशिक्षको की कमी रही। इस कारण कार्य प्रगतिशील नही पाया।

१९६२ मे जब कृषि विश्वविद्यालय स्थापित हुए तो यह कमी भी दूर हुई। इस के साथ ही देश की सरकारों ने भूमि सुधार के कार्यक्रम अपनाएं। जमींदारी और जागीरदारी प्रथाओं का उन्मूलन किया गया। किसानों की बेदखली समाप्त होकर उन्हें खातेदारी अधिकार प्राप्त हुए, जिससे उन्होने अपनी-अपनी भूमि और खेतों मे दत्तचित्त और निर्भय होकर दिलचस्पी लेनी शुरू की। फलस्वरूप देश मे हरित क्रान्ति का उदय हुआ और जहां १९५० मे अन्न की उपज ३.५ करोड़ टन थी अब १३.५ करोड़ टन का लक्ष्य पार हो चुका है। हां, बढ़ती आबादी के सन्दर्भ मे गरीबी अभी बनी है। किन्तु

विज्ञान और पुरुषार्थ के सहयोग से कैसे उन्नति हो सकती है, यह सिद्ध हो चुका है। इस प्रकार सर्वांगीण उन्नति के कार्यक्रमों में बैंकों ने भी बड़ी अहम भूमिका निभाई है।

कांगड़ी ग्राम में बैंकों द्वारा कर्ज दिए गए, इसका मैंने गोष्ठी में जिक्र किया और कहा कि बहुत से कर्जदारों ने आधे से ज्यादा कर्ज चुका दिये हैं और कईयों की दैनिक आय ३०-४० रु० तक बढ चुकी है। इस ग्राम मे अब दो गोबर गैस प्लांट भी लग चुके हैं। और ग्रामवासियो की आंख में आशा और विश्वास की चमक नजर आती है।

मैंने डा० स्वामीनाथन की प्रेरणा से भारत सरकार के पर्यावरण मन्त्रालय द्वारा प्रचलित गंगा, हिमालय और पश्चिमी घाट योजनाओं का भी जिक्र किया और कहा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय को ऋषिकेश से गढमुक्तेश्वर तक का तट अनुसन्धान और विस्तार कार्य हेतु प्रदान किया गया है। इसी प्रकार गंगा नदी पर स्थित सभी विश्व-विद्यालय इस कार्यक्रम को उठा रहे है और विश्वविद्यालय का सामाजिक सुधार में योगदान होना चाहिए या नही यह विवाद अब भारत मे समाप्त हो चुका है।

एन०एस०एस० का जिक्र करते हुए मैंने कहा कि भारतीय विश्वविद्यालय सर्वांगीण मानव निर्माण को अपना लक्ष्य मान कर चलते हैं। वह हल और कुल्हाड़ी के पीछे खड़े मानव समझ कर कुल्हाड़ी का प्रयोग करें। विश्वविद्यालय का मुख्य कर्तव्य मानसिक जंजीरों को तोडना है तथा शिक्षको और नेताओ का प्रशिक्षण है ताकि वे राष्ट्र के युवक समुदाय को सही नेतृत्व दे सके।

विश्वविद्यालय सूर्य के समान है उन्हें अपने इर्द-गिर्द प्रकाश की किरणें वितरित करनी होंगी। अन्धकार को दूर करना होगा। गरीबी के विरुद्ध युद्ध मे पूरा योगदान देना होगा।

इस गोष्ठी मे मदुराई गांधी ग्राम रूरल इंस्टीट्यूट के कुलपति डा० आराम ने बड़ा रुचिकर और ज्ञानवर्धक पत्र पढा। उन्होंने भारत मे हो रहे कार्यक्रम पर विस्तार से प्रकाश डाला और बतलाया कि गाधी ग्राम के स्नातकों की आज देश की अर्थ व्यवस्था मे खूब माग है क्योंकि वह सही मनों में धरती के पुत्र हैं।

इसी प्रकार रांची के कुलपति श्री धान ने भी अपने विचार प्रकट किये और कहा कि पिछड़े वर्गों की समस्याओं से विश्वविद्यालय विमुख नही हो सकते।

— 0 —

# सम्पादकीय वक्तव्य

इस विश्वविद्यालय को जो यश और गौरव प्राप्त हुआ है उसका प्रथम श्रेय इसके सर्वप्रथम कुलपति तथा वर्तमान विजिटर परमसम्माननीय पं० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार जिन्होने इस राष्ट्रीय संस्था को विश्वविद्यालय के समान स्तर की राजकीय मान्यता दिलाई। तत्पश्चात् श्रेद्य महेन्द्र प्रताप शास्त्री, आचार्य प्रियव्रत जी, स्व० रघुवीर सिंह शास्त्री, डा० सत्येकेतु विद्यालंकार ने इसके कुलपतियों का सुशोभित किया। उनके परिवार वर्तमान कुलपति श्रेद्य बलभद्र कुमार जी हूजा (अवकाश प्राप्त आई० ए० एस०) ने इसके कुलपति पद को सुशोभित श्रेद्य हूजा जी जहां राजकीय सेवा में कुशल प्रशासक रह चुके हैं वहीं वह शिक्षा संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में भी अग्रणी हैं। उन्होंने कुछ दिन पूर्व राष्ट्रमण्डलीय देशों के कुलपतियों के सम्मेलन में भाग लेकर इस विश्वविद्यालय का नाम ससार के शिक्षाविश्मादों के समक्ष ऊंचा उठाने का प्रयास किया है। उनमें असाधारण प्रतिभा एवं विचार शक्ति है। इस विश्वविद्यालय का परम सौभाग्य है कि उसे ऐसा कुलपति प्राप्त हुआ है। यह पत्रिका उनका हार्दिक अभिनन्दन करती हुई उन्हें साधुवाद देती है। वे शुनायु हो।

इस संस्था के कुलाधिपति माननीय वीरेन्द्र जी देश की इनी गिनी विभूतियों मे से हैं। उनकी कृपा एवं सौजण्य से ही यह विश्वविद्यालय निरन्तर प्रगति कर रहा है।

जिन महानुभावो ने इस पत्रिका के कार्य मे सहयोग दिया है सभी धन्यवाद के पात्र हैं। तथा जिन्होंने सहयोग न देने के बाद अपनी शुभकामनाएं प्रदान की हैं वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। डा० जबरसिंह जी सेंगर कुलसचिव इस पत्रिका के व्यवस्थापक हैं तथा वित्त अधिकारी श्रेद्य बृजमोहन थापर जी ने पत्रिका को अत्यन्त सहयोग प्रदान किया है। अतः उन्हें धन्यवाद देना भी परमावश्यक है।

पत्रिका का यह अंक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। यदि उन्हें इस पत्रिका से लेशमात्र भी सन्तोष प्राप्त हुआ तो मेरा श्रम सफल है।